श्री शिवमहिम्नःस्तोत्रम्

एवं

नर्मदा महिमा

कावेरिकानर्मदयोः पवित्रे
समागमे सज्जनतारणाय।
सदैव मान्धातृपुरे वसन्त-
मोङ्कारमीशं शिवमेकमीडे।।

अर्थ :- माँ नर्मदा और कावेरी के पवित्र सङ्गम पर स्थित मान्धाता नगरी में सत्पुरुषों को संसार से तारने के लिए सदा ही निवास करनेवाले ओंकारेश्वर शिव की मैं स्तुति करता हूँ।

प्रकाशक :
मार्कण्डेय संन्यास आश्रम पब्लिक ट्रस्ट, ओंकारेश्वर
मान्धाता, जिला : खण्डवा (म.प्र.) - ४५० ५५४

प्रकाशक : मार्कण्डेय संन्यास आश्रम पब्लिक ट्रस्ट, ओंकारेश्वर

द्वितीय संस्करण : १९ सितम्बर, २०११
प्रतियाँ : १,००० (एक हजार)

प्रधान सम्पादक : स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती

सम्पादक मण्डल : ब्र. किशोर चैतन्य
स्वामी आशुतोष भारती
स्वामी देवानन्द सरस्वती
स्वामी उरुक्रमानन्द

पुस्तक प्राप्ति स्थान :
मार्कण्डेय संन्यास आश्रम पो. ओंकारेश्वर-४५०५५४,
जिला : खण्डवा (म.प्र.)
फोन नं.: ०७२८०-२७१२६७, ९४२५९३९५६७

सहयोग राशि : ४० रुपये

मुद्रक : प्रिंट पेक प्रा.लि., इन्दौर

विभिन्न आश्रम

परम पूज्य सद्गुरुदेव ब्रह्मलीन स्वामी अभयानन्दजी सरस्वती महाराज तथा परम पूज्य सद्गुरुदेव ब्रह्मलीन स्वामी रामानन्दजी सरस्वती महाराज के द्वारा स्थापित एवं पूज्य स्वामी प्रणवानन्दजी सरस्वती महाराज के संरक्षण में संचालित आश्रमों का विवरण :-

१. श्री मार्कण्डेय संन्यास आश्रम
ओंकारेश्वर, मान्धाता, पूर्वी निमाड़-खंडवा-४५०५५४ (म.प्र.)
फोन ०७२८०-२७१२६७, मो. ९४२५९३९५६७

२. अभय कैलाश आश्रम,
बाराबंकी (उ.प्र.),फोन ०५२४८२२४८९८, मो. ०९४५४६६८६६८

३. श्री अभय संन्यास आश्रम,
वनकुटी, बंकी, बाराबंकी (उ.प्र.), मो. ९३६९४७९३५५

४. श्री अभय संन्यास आश्रम
सी.के.८/१२, गढ़वासी टोला
वाराणसी, २२१००१ (उ.प्र.), मो. ०९९८४७ ४१४९४

५. श्री अभय साधना कुटीर (ओंकारेश्वर महादेव)
मु.पो. केरपानी, तहसील. करेली
नरसिंहपुर, मध्यप्रदेश-४८७००१, फोन ०७७९३-२७८५५५

६. श्री तुरीय आश्रम, माई की बगिया,
अमरकण्टक,जिलाःअनूपपुर-(म.प्र.),४८४८८६,मो. ०९४२४३५३२९३

७. श्री अभयधाम
नटवा जंगी रोड, अभय तिराहा, मिर्जापुर (उ.प्र.), २३१००१
मो ०९८९७१२१८४६

८. श्रीराम कुटी आश्रम, रामगढ़, जिलाःखरगोन(म.प्र.), मो.९००९३९५४८५

९. विरक्त कुटी
राजघाट, जिलाः बुलन्दशहर (उ.प्र.)

अनुक्रमणिका

श्री मार्कण्डेय संन्यास आश्रम
एक अल्प परिचय

ब्रह्मलीन परमपूज्य स्वामी रामानन्द सरस्वतीजी महाराज के द्वारा नर्मदा तट पर पवित्र ओंकारेश्वर क्षेत्र में स्थापित श्री मार्कण्डेय संन्यास आश्रम भारतवर्ष के प्रतिष्ठित आश्रमों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। इस आश्रम की स्थापना की कहानी भी विलक्षण ही है। सन् १९६२ में पूज्य महाराजश्री एक ब्रह्मचारी के रूप में नर्मदा-तट पर परिव्रजन करते हुए ओंकारेश्वर तीर्थ में पहुँचे। वर्तमान में जहाँ आश्रम स्थापित है, उस स्थान के निकट ही एक अर्जुन वृक्ष के नीचे रहकर उन्होंने तीन माह का समय गहन साधना में व्यतीत किया।

इसके पश्चात् वे माँ नर्मदा को प्रणाम कर आगे भ्रमण के लिए चल दिए। परन्तु इस स्थान के शान्त, एकान्त और पवित्र वातावरण ने उनके मन को कुछ ऐसा आकर्षित कर लिया कि सन् १९६५ में वे पुनः साधना की दृष्टि से यहीं लौट आए। इस बार उनके अभिन्न सखा पूज्य स्वामी कृष्णानन्दजी विरक्तफ भी उनके साथ थे। दोनों विभूतियों ने एक कच्ची कुटिया बनाकर लगभग छह मास तपश्चर्यापूर्वक इस स्थान पर निवास किया। तत्पश्चात् उन दोनों ने प्रयाग कुम्भ में भाग लेने के लिए प्रस्थान किया। प्रयाग में जब महाराजश्री ने अपने गुरुदेव ब्रह्मलीन परमपूज्य स्वामी श्री अभयानन्दजी को अपने रेवातट-निवास के विषय में बताया तो उनके मन में भी ओंकारेश्वर-दर्शन का भाव स्फुरित हो गया। अतः महाराजश्री ओंकारेश्वर पहुँचकर गुरुदेव के लिए कुटिया के निर्माण में जुट गए।

कुछ समय पश्चात् पूज्य गुरुदेव पधारे और इस स्थान की नीरवता से आकर्षित होकर तीन वर्ष तक कहीं गए ही नहीं। उनके यहाँ रहने से विरक्त सन्त एवं गृहस्थ भक्त भी आने लगे। उस समय ओंकारेश्वर क्षेत्र में अभ्यागत महात्माओं के लिए भिक्षा आदि की कोई समुचित व्यवस्था नहीं थी। इस

समस्या को देखकर करुणहृदय गुरुदेव के मन में ऐसा संकल्प आया कि यहाँ अभ्यागत सन्तों के निवास और भिक्षार्थ कोई स्थायी व्यवस्था बने तो अच्छा हो। अपने गुरुदेव के इस संकल्प को पूर्ण करने के लिए ही महाराजश्री ने इस आश्रम के निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया।

आश्रम के प्रारम्भिक वर्षों में महाराजश्री ने सन्तों के साथ मिलकर निर्माण-कार्य में अथक परिश्रम किया। सन्तों के परिश्रमरूपी नींव पर खड़े होने के कारण आज भी इस आश्रम के वातावरण में एक सात्त्विक पवित्रता का अनुभव सभी को होता है। धीरे-धीरे आश्रम में गोशाला, श्री अभयेश्वर महादेव मन्दिर एवं भगवान् भाष्यकार मन्दिर की स्थापना हुई। वाटिका, सन्त-निवास, सत्सङ्ग-भवन एवं भक्त-निवास का भी निर्माण हुआ। तीर्थ-यात्रियों को नर्मदा स्नान आदि की सुविधा उपलब्ध कराने की दृष्टि से एक विशाल **'अभयघाट'** का निर्माण भी कुछ वर्ष पूर्व आश्रम के श्रद्धालु भक्तों द्वारा कराया गया।

पूज्य महाराजश्री शांकर-वेदान्त तथा आगमशास्त्र के मूर्धन्य एवं अनुभवी विद्वान् थे। **स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्** - इस श्रुति को जीवन में आत्मसात् करते हुए उन्होंने यहाँ रहकर मुमुक्षुओं के कल्याणार्थ मुक्तहस्त से अपनी ज्ञान-सम्पदा का वितरण किया। **श्रीमद्भगवद्गीता, दशोपनिषद् एवं ब्रह्मसूत्र** - इस प्रस्थानत्रयी का शांकरभाष्य आत्मज्ञान-प्राप्ति का मूल आधार है। **संन्यस्य श्रूयात्** - इस श्रुति के आदेशानुसार परमहंस संन्यासी सम्प्रदाय में तो इसका स्वाध्याय अनिवार्य ही है। महाराजश्री इस प्रस्थानत्रयी का विवेचनापूर्ण स्वाध्याय जिज्ञासुओं के हितार्थ वर्षों तक अनवरतरूप से कराते रहे। उनके द्वारा पोषित इस शांकरी परम्परा को उनके सुयोग्य शिष्य स्वामी प्रणवानन्द सरस्वतीजी पूर्ण निष्ठा से आगे बढ़ा रहे हैं। देश के कोने-कोने से विरक्त एवं गृहस्थ सभी प्रकार के जिज्ञासु साधक यहाँ आकर अपनी ज्ञान-पिपासा को शान्त करते हैं। यहाँ से लब्धज्ञान अनेक सन्त समाज में धर्म तथा ज्ञान का प्रचार कर सनातन धर्म के रक्षण में सहयोग दे रहे हैं।

आश्रम में जिज्ञासुओं के उपकारार्थ एक विशाल पुस्तकालय की भी

व्यवस्था है।

आश्रमस्थ गोशाला, वाटिका, मन्दिर, पाकशाला, धर्मार्थ चिकित्सालय आदि प्रकल्पों में अनेक प्रकार की सेवा प्रवृत्तियाँ चलती रहती हैं, जिनमें सहयोग करके कोई भी साधक कर्मयोग के अनुष्ठान का सुन्दर अवसर प्राप्त कर सकता है।आश्रम के मन्दिरों में प्रातः एवं सायंकाल आरती-पूजन एवं सामूहिक स्तोत्रपाठ नियमित रूप से होते हैं। साथ ही साथ माँ नर्मदा के हर-हर निनाद से गुञ्जित आश्रम का शान्त वातावरण साधकों के भजन-ध्यान में उत्प्रेरक सहयोगी की भूमिका बखूबी निभाता है। इस आश्रम को देखकर वैदिक-ऋषिपरम्परा के आश्रमों की स्मृति सजीव हो उठती है। यहाँ ज्ञानयोग, भक्तियोग तथा कर्मयोगरूपी तीन धाराओं की त्रिवेणी सतत प्रवाहमान है, जिसमें अवगाहन करके मुमुक्षु साधक सहज रूप से अपने कल्याण का सम्पादन कर सकते हैं।

*****

प्राक्कथन

अनादिकाल से भवाटवी में भटकता हुआ जीव निरन्तर आनन्द की खोज में लगा हुआ है। परन्तु आनन्द की प्राप्ति के लिए वह उन साधनों को ग्रहण करता है जो उसे सफलता नहीं दिला सकते। वह आनन्द जो कि मानवमात्र का लक्ष्य है, शास्त्रसिद्ध है, उसे प्राप्त करना है, तो शास्त्रीय साधनों का ही अवलम्बन लेना चाहिए। अनावश्यक तर्कपटुता हमें लक्ष्य से दूर कर सकती है क्योंकि जो तर्कातीत है उसे केवल तर्कों के सहारे समझने की चेष्टा करना सीधे-सीधे असफलता को निमन्त्रण देने जैसा है। अतः शास्त्र-प्रतिपाद्य ईश्वरप्राप्तिरूप उद्देश्य की उपलब्धि के लिए शास्त्रीय निष्काम-कर्म, उपासना तथा ज्ञान का अवलम्बन असन्दिग्ध साधन हैं। इनमें से ज्ञान साक्षात् ईश्वरप्राप्ति में साधन है तो अन्य दोनों परम्परा से साधन हैं।

उपासना का अर्थ है - **उपास्य का गुण-चिन्तन**। स्तुति का अर्थ है- **गुण-कथन**। गुण-कथनपूर्वक साम्ब-सदाशिव के गुणों के चिन्तनरूप उपासना का प्रतिपादन पुष्पदन्ताचार्य इस शिवमहिम्नस्तोत्र के माध्यम से करते हैं। भक्तप्रवर पुष्पदन्ताचार्य शिवनिर्माल्य के उल्लंघनरूप अपराध के कारण जब अदृश्य होना आदि अलौकिक शक्तियों से हीन हो गए, तब साम्ब-सदाशिव की प्रसन्नता हेतु यह अनुपम स्तोत्र उनके मुखारविन्द से धरा पर अवतरित हुआ, जिसे आगम के ग्रन्थों में '**सिद्धस्तोत्र**' के रूप में जाना जाता है।

इस दिव्य महिम्नःस्तोत्र की शिवतोषिणी व्याख्या **परम पूज्य प्रातःस्मरणीय ब्रह्मलीन महाराज श्रीमत्स्वामी रामानन्दजी सरस्वती** के साहित्यिक बगीचे का एक छोटा-सा पुष्प है जिसको उन्होंने उनके ही द्वारा स्थापित श्री मार्कण्डेय संन्यास आश्रम, ओंकारेश्वर में वीतराग सन्तों की प्रार्थना पर चातुर्मास के अवसर पर पल्लवित-पुष्पित एवं विकसित किया था। व्याख्या में पूज्यश्री ने प्रत्येक श्लोक के उन पौराणिक सन्दर्भों को संक्षेप में स्पर्श करने का प्रयत्न किया है जिनके बिना स्तोत्र का व्याख्यान अधूरा ही रह जाता। चूँकि यह सन्तों के आग्रह पर किया गया प्रवचन था, अतः उसे ज्यों-का-त्यों

पुस्तक के रूप में प्रकाशित करना सम्भव न था। अतः उनकी शैली, भाव एवं अर्थ गाम्भीर्य को सुरक्षित रखते हुए प्रकाशित करने की गम्भीर चुनौती प्रकाशकों के सामने थी।

डेढ माह के अन्दर-अन्दर ही पूज्यश्री की पहली पुण्यतिथि होने से समय भी बहुत कम था। विचार हुआ कि व्याख्यान के साथ-साथ शिवमहिम्नस्तोत्र पर सान्वय व्याख्या भी प्रकाशित हो जाए ताकि सर्वसाधारण के लिए ग्रन्थ की उपयोगिता अधिक बढ़ जाए और आध्यात्मिक लाभ भी अधिक हो।

ब्रह्मलीन पूज्य महाराजश्री ने ओंकारेश्वर आश्रम में ही किसी अवसर पर नर्मदामहिमा के ऊपर अपना अनुभूतियुक्त व्याख्यान दिया था जिसमें नर्मदाष्टक की भावपूर्ण नर्मदामहिमाकौमुदी व्याख्या के साथ नर्मदा-परिक्रमा के अपने अनुभवों का सुन्दर वर्णन किया गया है। ऐसा विचार हुआ कि इस व्याख्या का प्रकाशन भी श्री शिवमहिम्नःस्तोत्र के साथ-साथ ही हो जाए क्योंकि नर्मदा के तट पर भक्तों को भगवत्पाद आद्यशंकराचार्यजी के द्वारा रचित नर्मदाष्टक के पाठ के द्वारा माँ की स्तुति और महिमागान किए बिना सन्तोष नहीं होता। पर विडम्बना यह थी कि इस स्तोत्र का भावार्थ तो अनेक विद्वानों ने प्रकाशित किया है, किन्तु सम्भवतः शब्दों की जटिलता की वजह से सान्वय-व्याख्या केप्रकाशन की ओर आज तक किसी ने भी ध्यान नहीं दिया।

यह भी कार्य थोड़ा कठिन था। हमने अपने अभिन्न ब्र. किशोर चैतन्यजी को, जो कि महाराजश्री के लगभग प्रत्येक प्रकाशन से जुड़े हैं, इस गुरुतर दायित्व को पूर्ण करने की जिम्मेदारी सौंपी। मुझे यही लग रहा था कि इतनी जल्दी इस ग्रन्थ को आपके हाथों तक पहुँचाना कैसे सम्भव हो पाएगा? पर उन्होंने पाँच-पाँच घण्टे तक अथक परिश्रमपूर्वक इस महत्वपूर्ण जिम्मेदारी को पूर्ण किया। गुरुसेवा में लगा हुआ कर्तव्यपरायण शिष्य ही ऐसा कर सकता है। रामकृष्ण मिशन के स्वामी उरुक्रमानन्दजी (रवीन्द्र महाराज), जिन्होंने महाराजश्री की स्मारिका के प्रकाशन में टाइपिंग एवं कम्पोजिंग के बेहद महत्वपूर्ण कर्तव्य को बड़ी ही सहजतापूर्वक सम्पन्न किया था, इस ग्रन्थ के प्रकाशन में भी उन्होंने उसी दायित्व को पूर्ण किया। प्रतिदिन चार किलोमीटर

चलकर इस रूप में गुरु एवं जनता-जनार्दन की सेवा-आराधना, आप जैसे स्वामी विवेकानन्दजी के अनुयायियों के लिए आश्चर्य की बात नहीं है। स्वामी आशुतोषजी भारती तथा स्वामी देवानन्दजी सरस्वती - दोनों ही सन्तों ने **स्मारिका-प्रकाशन** में भी भारी योगदान दिया था, ने भी इस प्रकाशन में प्रूफ-संशोधन आदि, जो प्रकाशन का प्राण है, को पूर्णाहुति तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सभी अपने हैं, हम किन्हें धन्यवाद दें! परमात्मा शिव आप सबकी साधना के उत्तरोत्तर विकास में सहायक हों। महाराजश्री के साहित्य के प्रकाशन में आगे भी आप लोगों की भूमिका संस्था के साथ जुड़ी रहे।

सत्यं शिवं सुन्दरम्

गुरुचरणानुरागी,

स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती

ओंकारेश्वर

****

द्वितीय संस्करण

इस पुस्तक को सुधी पाठकों ने बहुत पसन्द किया। पुस्तक की माँग को देखते हुए प्रथम प्रकाशन के दो वर्ष बाद ही इसका पुनर्मुद्रण करना आवश्यक हो गया। इस द्वितीय संस्करण में प्रथम संस्करण की त्रुटियों को यथासम्भव दूर करने का प्रयास किया गया है। साथ ही आगम ग्रन्थों में शिवमहिम्नःस्तोत्र के श्लोकों द्वारा शिव-पूजन की जो विधि कही गई है, उसे भी संकलित करके संलग्न किया गया है। आशा है कि शिवभक्त इससे लाभान्वित होंगे।

१९ सितम्बर, २०११
आश्विन कृष्ण सप्तमी, वि.सं.२०६८
महाराजश्री की तृतीय पुण्यतिथि

गुरुचरणानुरागी,

स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती

श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रम्

(अन्वयार्थ एवं शिवतोषिणी व्याख्यायुतम्)

ॐ श्री गणेशाय नमः

गजाननं भूतगणादिसेवितं,
कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं,
नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम्॥

अन्वयार्थ : भूतगणादिसेवितम् = भूतसमूहों से स्वाभाविक ही सेवित, **कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम् =** जामुन और कैथ के सुन्दर फलों का भक्षण करनेवाले, **शोकविनाशकारकम् =** शोक का विनाश करनेवाले, **विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् =** सकलविघ्नों के नियंत्रक हैं चरणकमल जिनके ऐसे **उमासुतम् =** पार्वतीजी के प्रिय पुत्र, **गजाननम् =** गजवदन श्री गणेशजी को, **नमामि =** मैं (सर्वतोभावेन प्रथम) नमस्कार करता हूँ।

शिवतोषिणी

आगमशास्त्र में यह शिवमहिम्नस्तोत्र 'सिद्ध-स्तोत्र' के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्तोत्र को पुष्पदन्ताचार्य नामक एक शिवभक्त गन्धर्व द्वारा विरचित माना जाता है। आपत्काल में पुष्पदन्ताचार्य ने इसकी रचना की और भगवान् शिव इस स्तोत्र से सन्तुष्ट होकर प्रकट हो गये तथा पुष्पदन्ताचार्य की आपदा का हरण किया।

इसकी कथा इस प्रकार हैः-

एक राजा का सुन्दर बगीचा था जिसमें बड़े दिव्य पुष्प लगे हुए थे। पुष्पदन्ताचार्यजी विमान द्वारा उस बगीचे के ऊपर से जा रहे थे। उन्होंने बगीचा देखा, सुन्दर पुष्प लगे हैं। उनके मन में विचार आया कि पुष्प बड़े सुन्दर हैं, ये तो महादेव को चढ़ाने योग्य हैं। राजा इनको रखकर क्या करेगा? यह एक स्वाभाविक बात है कि जिसकी कहीं प्रीति रहती है तो कोई अच्छी वस्तु देखकर मन में संकल्प आता है कि यह वस्तु मैं उसको भेंट करूँ। इसी प्रकार पुष्पदन्ताचार्यजी ने विचार कर विमान को नीचे उतारने का संकल्प किया और विमान नीचे आ गया। उन्होंने बगीचे से पुष्प तोड़ लिये और ले जाकर भावपूर्वक महादेव का पूजन किया, शिवसहस्रनाम से पुष्प चढ़ाए। इधर प्रातःकाल राजा अपने बगीचे में आया। उसके अन्तःपुर का वह बगीचा था, उसने सोचा पुष्प किसने तोड़ लिये? पहरेदारों को बुलाया, उनसे पूछा। पहरेदारों ने कहा, 'हम तो सचेत थे, परन्तु किसी को देखा नहीं।' राजा ने पहरेदारों को बदल दिया, दूसरे पहरेदार रखे।

इधर पुष्पदन्ताचार्य ने उस दिन दिव्य पुष्पों से पूजन किया तो बड़ा आनन्द आया। दूसरे के बगीचे से इस प्रकार पुष्प तोड़कर चढ़ाना कोई विधि तो नहीं है, कर्मकाण्ड की दृष्टि से तो दोष ही है। पर वे महादेव को चढ़ाने योग्य पुष्प हैं, ऐसा उनके अन्दर का भाव था, इसलिये पुष्प तोड़ लिये। इस प्रकार उन्होंने दूसरे दिन भी उसी बगीचे से पुष्प लाकर पूजन किया। दो-तीन दिन बीत गये, तब राजा के मन में विचार आया, यह तो कोई साधारण मनुष्य नहीं है, देवकोटि का कोई जीव आकर ही पुष्प ले जाता है। उसको कैसे कुण्ठित करना है, ऐसा विचार करके बगीचे में जगह-जगह शिवजी को चढ़ा हुआ निर्माल्य बिखेर दिया। यदि कोई दैवीशक्तिसम्पन्न जीव आएगा तो इस पर उसका चरण पड़ेगा। जो वस्तु शिवजी को चढ़ गई वह शिवरूप ही हो जाती है। उस पर चरण रखने से शिवजी का अपमान हो जाएगा। शिवजी का अपमान होगा तो उस जीव की शक्ति कुण्ठित (सिद्धि नष्ट) हो जाएगी।

अगली बार पुष्पदन्ताचार्य पुष्प तोड़ने के लिये आए, उन्होंने निर्माल्य

पर ध्यान नहीं दिया, शिव-निर्माल्य पर पैर पड़ गया। निर्माल्य पर पैर पड़ते ही उनकी शक्ति कुण्ठित हो गई। जब वे विमान में बैठे तो विमान चला नहीं। उन्होंने सोचा क्या बात है? ध्यान किया तो देखा, ओहो! शिवजी का अपमान हो गया। शिवभक्त तो वे थे ही, तब उन्होंने 'हर' ऐसा पुकारा, इससे विमान में गति आ गई। 'हर' शब्द का अर्थ है - **हरति दुःखानि इति हरः।** 'हर' शब्द **हृञ् हरणे** धातु से बना है। सम्पूर्ण दुःखों का हरण कर लेता है इसलिये हर है।

इस प्रकार जब विमान में गति आ गई, तब पुष्पदन्ताचार्य एकदम भावावेश में आ गये। फिर शिवभावमय होकर उन्होंने यह स्तुति की। इसलिये इस स्तोत्र में कहीं कष्ट दूर करने की प्रार्थना नहीं है। शिवभावापन्न होकर उन्होंने स्तुति की तो महादेव प्रकट हो गये। तब पुष्पदन्ताचार्य के मन में थोड़ा-सा अहंकार आ गया। जीव में जरा-सी भी विशेषता आ जाती है तो, अहंकाररूप दोष आ जाता है और सीमित अहंता आ जाती है। उनके मन में आया कि मैंने महादेव की ऐसी स्तुति की कि महादेव स्वयं ही प्रकट हो गये। समीप में नन्दी खड़े थे, वे हँसने लगे तो उनके दाँतों पर शिवमहिम्न के एक-एक श्लोक लिखे हुए दिखे, तब इनका अहंकार दूर हो गया।

यह शिवमहिम्नस्तोत्र अपने ढंग का एक अद्भुत ही स्तोत्र है। अब प्रथम श्लोक का विचार करते हैं :-

श्रीपुष्पदन्त उवाच -

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः॥१॥

अन्वयार्थः हर ! = सम्पूर्ण दुःखों को हरनेवाले महादेव !

ब्रह्मादीनाम् गिरः अपि = (जब) सर्वज्ञ ब्रह्मादि देवों की वाणी (स्तुति) भी, **त्वयि** = आपमें, **अवसन्नाः** = अपर्याप्त (अयोग्य) है, **तत् ते** = तो (निर्गुण होते हुए भी अनन्तगुणयुक्त) आपकी, **महिम्नः** = महिमा के, **परम्** = अन्तिम, **पारम्** = सीमा तक, **अविदुषः स्तुतिः** = न जाननेवाले (अल्पज्ञ जीव) के द्वारा की गई स्तुति, **यदि असदृशी** = यदि आपके अनुरूप नहीं है (तो आश्चर्य नहीं है), **अथ** = इस प्रकार, **स्वमतिपरिणामावधि** = अपनी बुद्धि की योग्यता के अनुरूप, **गृणन्** = स्तुति करते हुए, **सर्वः** = सभी, **अवाच्यः** = आक्षेप रहित (निर्दोष) हैं, तब तो **स्तोत्रे** = आपकी स्तुति के विषय में, **मम-अपि** = मेरा भी, **एषः परिकरः** = यह प्रयत्न, **निरपवादः** = निर्दोष ही है।,

शिवतोषिणी

इस श्लोक में 'हर' शब्द सम्बोधन है। स्तुति नाम है गुण-कथन का और गुण-कथन ज्ञान के अधीन है। जितना जिसके विषय में ज्ञान है, उतना ही आप गुण-कथन कर सकते हैं। यदि किसी में हजार गुण हैं और आप दो-चार गुण कथन कर दीजिए। एक करोड़पति है और कह दो कि इसके पास हजार रुपये हैं तो आपके द्वारा उसकी निन्दा हो गयी। यहाँ समस्या हो जाती है। गुण-कथन ज्ञानाधीन है और परमेश्वर अनन्त गुणवाला है। स्वरूप से देखो तो निर्गुण है और सगुण विग्रह की दृष्टि से देखो तो अनन्तगुणवाला है। अनन्तगुणवाले के दो-चार-दस गुण कह देंगे तो स्तुति कैसे होगी? इसलिए भगवान् की स्तुति करने में दोष आने की सम्भावना का परिहार करने के लिए कहा कि स्तुति की जा सकती है।

पहले कहा आपकी स्तुति हो नहीं सकती। क्यों? दो प्रकार के जीव देखे जाते हैं। एक अस्मदादि (हम लोगों) के समान अल्पज्ञ जीव हैं, दूसरे ब्रह्मादि के समान सर्वज्ञ जीव हैं। पुष्पदन्ताचार्य का कहना है कि यह जो अल्पज्ञ जीव है, इसके द्वारा की गई स्तुति आपके योग्य नहीं, इसमें आश्चर्य नहीं क्योंकि यह जीव अल्पज्ञ है, यह अधिक जानता ही नहीं। सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि जो

सर्वज्ञ हैं उनकी वाणी भी आपकी स्तुति के विषय में कुण्ठित हो जाती है । वस्तुतः सम्पूर्ण गुणों का तो कोई भी वर्णन कर नहीं सकता है। इसलिए सर्वज्ञ भी आपकी स्तुति यथायोग्य तो कर नहीं सकता है। जब सर्वज्ञ ब्रह्मादि भी नहीं कर सकते तो हम कैसे कर सकते हैं? प्रश्न आता है कि फिर तो कोई भी स्तुति नहीं कर सकता है, इसका समाधान करते हैं।

आकाश का अन्त कोई नहीं पा सकता है। कोई भी पक्षी उड़ेगा तो आकाश का अन्त नहीं पा सकेगा, परन्तु जिसका जितना सामर्थ्य है उतना यदि कोई पक्षी उड़ता है तो उसमें कोई दोष नहीं। आकाश की सीमा को तो गरुड़ भी नहीं लाँघ सकता और कौआ भी नहीं। इसी प्रकार आपके गुण का पार कोई नहीं पा सकता है। चाहे वह सर्वज्ञ हो अथवा अल्पज्ञ, जितनी जिसकी बुद्धि है, उतनी स्तुति करता है, तो उसको दोष नहीं कहा जा सकता है। जब वह निर्दोष है, फिर तो मैं भी जो स्तुति करने जा रहा हूँ इसमें भी कोई दोष नहीं है। अर्थात् मैं स्तुति कर सकता हूँ। फिर शंका होती है कि इस श्लोक में स्तुति क्या हुई? **आपके गुण ऐसे हैं कि उनकी स्तुति कोई पूर्णरूप से नहीं कर सकता है**, इस बात का जो कथन है यही स्तुति है। बालक की तोतली भाषा सुनकर जैसे माता-पिता को आनन्द आता है ऐसे ही जिसकी जितनी बुद्धि है उतनी यदि कोई स्तुति करता है तो आपको आनन्द आएगा ही।

****

जब हम वैदिक वाङ्मय को देखते हैं तो परमात्मा के तीन स्वरूप देखने को मिलते हैं। १) निर्गुण-निराकार, जो कि ब्रह्म है। २) सगुण-निराकार, जो ईश्वरतत्त्व है। ईश्वरतत्त्व भी निराकार है, परन्तु उसमें माया शक्ति विद्यमान है तभी तो जगत् को उत्पन्न करता है, जैसे- **तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय (छा.उप.-६.२.३)** और कृपाशक्ति का आलम्बन करके विभिन्न प्रकार के रूप हैं जैसे - **कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।** यह सगुण-साकार रूप है।

सारा विश्व भी सगुण-साकार रूप है। आगे श्लोक में कहेंगे कि मैंने स्तुति करने की प्रतिज्ञा तो कर ली है, परन्तु जिसकी स्तुति करने में वेद भी भयभीत होता है, अर्थात् परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए वेद कहता है - **नेति-नेति (बृह.उप.-२.३.६)**। जिसकी स्तुति करने में वेद को भी भय उत्पन्न होता है कि कहीं गलती न हो जाए तो उसकी स्तुति तुम कैसे करना चाहते हो? इस प्रकार का प्रश्न उत्पन्न होता है, तो अगले श्लोक द्वारा समाधान करते हुए पुष्पदन्ताचार्यजी कहते हैं -

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः।।२।।

अन्वयार्थः च = और, **तव** = आपकी, **महिमा** = महिमा, **वाङ्मनसयोः** = वाणी और मन के, **पन्थानम्** = मार्ग (पहुँच) से, **अतीतः** = परे है, **यम्** = जिस (महिमा) को, **श्रुतिः अपि** = वेद भी, **चकितम्** = भय और आश्चर्य से युक्त हुआ, **अतद्व्यावृत्त्या** = ब्रह्मभिन्न सम्पूर्ण प्रपञ्च के निषेध द्वारा, **अभिधत्ते** = कथन करता है, **सः** = वह परमात्मा (शिवतत्त्व), **कस्य स्तोतव्यः** = किसकी स्तुति का विषय हो सकता है? (क्योंकि) **कतिविधगुणः** = कितने (अनन्त) गुणवाला है? **कस्य विषयः** = यदि निर्गुण परमात्मा को लिया जाए तब वह किसका विषय बनेगा? **अर्वाचीने पदे** = कृपावशात् धारण किये गये नवीन (सगुण-साकार) रूप में, **कस्य मनः** = किसका मन, **न पतति** = प्रवृत्त नहीं होता, **न वचः**

= और किसकी वाणी स्तुति में प्रवृत्त नहीं होती? अर्थात् सबकी वाणी और मन आपके नवीन रूप में प्रवृत्त होते हैं।

शिवतोषिणी

पुष्पदन्ताचार्यजी कहते हैं - हे भक्तों के दुःखों को हरण करनेवाले भगवन्! आपकी जो महिमा है (महिमा शब्द संस्कृत भाषा में पुल्लिंग में प्रयुक्त होता है और हिन्दी में स्त्रीलिंग में), आपका जो स्वरूप है वह मन-वाणी की पहुँच से परे है। जिस महिमा का वेद से बढ़कर कोई वर्णन करनेवाला हो नहीं सकता है, जिसको वेद भी भयभीत होता हुआ विस्मय में पड़कर अतद्व्यावृत्ति के द्वारा कहता है। तद् शब्द का अर्थ यहाँ परमात्मा है और अतद् अर्थात् न तद् इति अतद्। जो परमात्मा नहीं है वही अतद् है अर्थात् जगत्। जगत् की व्यावृति (छोड़कर) करके जो शेष रहता है वही परमात्मा है। इसी को उपनिषदों में नेति-नेति कहकर समझाया है।

श्रुति के सामने भी बड़ी समस्या है जैसे किसी बालक ने कभी सिनेमा नहीं देखा, पर सुना है कि सिनेमा में एक परदा होता है जिसपर चित्र दीखते हैं। एक दिन अपने पिता के साथ सिनेमा देखने गया, उस समय खेल चल रहा था, हॉल में जाते ही पिता से पूछा इसमें परदा कौन है? पिता के सामने समस्या है कि परदा तो वहाँ है, पर बालक को कैसे समझाएँ? जिधर अँगुली दिखाएगा, उधर कोई-न-कोई चित्र है। यदि परदे पर हाथ रखकर भी कहेगा कि यह परदा है तो बालक वहाँ स्थित चित्र को ही परदा समझ लेगा। यदि कहेगा कि सभी परदा है तो सभी चित्रों को मिलाकर परदा समझ लेगा। इसी प्रकार श्रुति को भी कई प्रकार से समझाना पड़ता है कि यह आत्मारूप परदा है। श्रुति कहती है- नेति-नेति अर्थात् सभी चित्रों का निषेध करती है। निषेध करने पर क्या हुआ? कहा - सभी चित्रों का निषेध करने पर जो शेष रहा वही परदा है।

दूसरा यही कहना पड़ता है कि सब परदा ही है। चित्र दीखता है पर है

नहीं। इसलिये श्रुति कहती है - **सर्वं खल्विदं ब्रह्म** (छा.उप.-३.१४.१) - ये सभी ब्रह्म ही है। इस प्रकार **अतद्व्यावृत्तिः** का दूसरा अर्थ यह भी है - **तस्य व्यावृत्ति इति तद्व्यावृत्तिः** अर्थात् परमात्मा को हटाना। **न तद्व्यावृत्तिः इति अतद्व्यावृत्तिः** - अर्थात् परमात्मा को हटाना नहीं, सब कुछ परमात्मा ही है। इस प्रकार श्रुति परमात्मा का निषेधमुख और विधिमुख दोनों प्रकार से कथन करती है। इसलिए कहा कि श्रुति भयभीत होकर कथन करती है क्योंकि जो शब्द का विषय नहीं है उसको यदि शब्द से कहें तो भय लगा ही रहता है। इसलिये कहा कि वह किसकी स्तुति का विषय बन सकता है? यदि परमात्मा को सगुण मानकर स्तुति करेंगे तो अनन्त गुणवाला है और निर्गुण मानकर स्तुति करेंगे तो किसका विषय है? मन-वाणी का विषय तो बन नहीं सकता, तब स्तुति कैसे होगी?

फिर कहते हैं अच्छा, आपके इस प्रकार के स्वरूप की स्तुति भले ही नहीं की जा सकती है, परन्तु आपका जो कृपावशात् धारण किया गया सगुण-साकार विग्रह (अर्वाचीन पद) है, इसमें किसका मन नहीं जाता और वाणी नहीं जाती। जैसे - **कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।** महादेव कर्पूरगौर हैं, सिर में जटा है, त्रिशूल धारण किया है, जटा में गंगा और मस्तक पर चन्द्रमा है, साँप की माला पहने हुए हैं, बाघाम्बर पहने हुए हैं, विभूति लगाए हैं इस प्रकार के स्वरूप की स्तुति तो सभी कर सकते हैं। इस प्रकार के विग्रह में किसका मन नहीं जाता और किसकी वाणी नहीं जाती। अर्थात् सभी की मन-वाणी जा सकती है, तो हम भी स्तुति कर सकते हैं।

****

अब प्रश्न यह आता है कि आप स्तुति करके क्या करना चाहते हैं? क्या आप अपनी स्तुति से महादेव को आकर्षित करना चाहते हैं? क्योंकि स्तुति तो किसी को प्रसन्न करने के लिये ही की जाती है। वस्तुतः आप जिन महादेव की स्तुति करने जा रहे हैं उनको वेदवाणी भी आकर्षित नहीं कर सकती तो आप कैसे

आकर्षित करेंगे? जहाँ पर बड़े-बड़े विद्वानों की वाणी की भी गिनती नहीं है तो आपकी क्या बात है? कहते हैं, ऐसा नहीं है, मैं तो अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए स्तुति कर रहा हूँ। महादेव को चमत्कृत करने के लिए स्तुति नहीं कर रहा हूँ। इसी बात को कहते हैं -

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम्।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता।।३।।

अन्वयार्थ : ब्रह्मन्! = हे ब्रह्मस्वरूप महादेव! **मधुस्फीताः** = शहदमिश्रित (अत्यन्त मधुर), **परमम्** = सर्वोत्कृष्ट, **अमृतम्** = अमृतमय, **वाचः** = वेदवाणी के, **निर्मितवतः** = निर्माण करनेवाले, **तव** = आपको, **किं सुरगुरोः** = क्या देवगुरु बृहस्पति की, **वाग् अपि** = वाणी भी, **विस्मयपदम्** = आश्चर्य में डाल सकती है? **तु** = किन्तु, **पुरमथन!** = हे त्रिपुरनाशक! **भवतः** = पुण्यचरित्र आपके, **गुणकथनपुण्येन** = गुणकथन (महिमा कीर्तन) से उत्पन्न पुण्य के द्वारा, **एताम् वाणीम्** = अपनी इस वाणी को, **पुनामि** = पवित्र करता हूँ, **इति** = इसलिए, **अस्मिन् अर्थे**= इस गुणकथनरूपी प्रयोजन में, **मम बुद्धिः** = मेरी बुद्धि, **व्यवसिता** = तत्पर होकर लगी है।

शिवतोषिणी

हे ब्रह्मन्! हे पुरमथन! इस श्लोक में दो सम्बोधन हैं। ब्रह्मन् सम्बोधन पहले है। इसलिए है कि ब्रह्मा के मुख से पहले वेद का प्राकट्य परमेश्वर (शिव)

ने किया है। इसलिए पहला सम्बोधन वेद के प्राकट्य के विषय में है और दूसरा सम्बोधन है पुरमथन। पुरमथन महादेव का नाम क्यों पड़ा? त्रिपुरासुर नाम का एक दैत्य था जो बड़ा वैज्ञानिक था। उसने तीन ऐसे पुर बनाए थे जो लोहे, चाँदी और सोने के बने हुए थे। उनमें खाने-पीने, टहलने, तैरने की सभी सुविधाएँ थीं। उनमें वह अपनी दैत्यसेनासहित रहता था। जब चाहे पृथ्वी या स्वर्गलोक में पहुँचता और मारकाट, लूटपाट करके फिर अन्तरिक्ष में जा ठहरता था। जब सभी देवता और मनुष्य पीड़ित हो गए, तो उन्होंने महादेव से प्रार्थना की। महादेव ने उन पुरों का संहार किया, इसलिए महादेव का नाम पुरमथन पड़ा है।

इसी प्रसंग में रुद्राक्ष-उत्पत्ति की भी एक कथा है। जब महादेव ने त्रिपुरासुर को मारने के पश्चात् एक जगह बैठकर जीवों के दुःखों का स्मरण किया तो उनके नेत्रों से अश्रु गिर गए। वही अश्रु मूर्तिमान् होकर तपस्या करने लगे और उन्होंने शिवजी से प्रश्न पूछा कि हमारी उत्पत्ति किसलिए हुई है? महादेव ने कहा, 'तुम जीवों के कल्याण के लिए रुद्राक्ष-वृक्ष बन जाओ। जो रुद्राक्ष धारण करेगा, उसकी दुर्गति नहीं होगी।' कृपाशक्ति बड़ी विलक्षण है, इसको बुद्धिवादी नहीं समझ सकता है।

यहाँ त्रिपुर का एक अन्य अर्थ भी ले सकते हैं। हम लोगों के पास भी तीन पुर हैं। स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर है। जाग्रदवस्था में स्थूल शरीर (एक पुर) में, स्वप्नावस्था में सूक्ष्म शरीर (दूसरे पुर) में, गहरी निद्रा में कारण शरीर (तीसरे पुर) में जीव रहता है। जीव बस इन तीनों पुरों में ही विचरण करता रहता है। तुरीयभावापन्न जो महादेव हैं, वही इन तीनों पुरों का नाश कर सकते हैं, अर्थात् बाधित करने में समर्थ हैं इसलिए उनका नाम पुरमथन या त्रिपुरान्तक है।

इस श्लोक में वेदवाणी (वाक्) के तीन विशेषण दिए हैं - **मधुस्फीता, अमृतम्, परमम्**। **मधुस्फीता** अर्थात् मधु से युक्त हुई-सी मधुर लगती है। वेदवाणी बड़ी विलक्षण है, कहीं भी स्वरयुक्त वेदपाठ हो रहा हो तो आपको सुनने में ऐसा लगता है कि सुनते ही रहें। इस वेदवाणी का जब कोई आधार ले लेता है तो उसको अमृत प्राप्त होता है, वह देवता बन जाता है, इसलिए **अमृतम्** कहा है।

इतना ही नहीं, उस वेदवाणी - उपनिषद् का आधार जो ले लेता है वह परमम् अमृतम् (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है।

ऐसी वेदवाणी को निःश्वासमात्र से प्रकट करनेवाले आपको क्या सुरगुरु (बृहस्पति) की वाणी भी विस्मय में डाल सकती है? अर्थात् कभी नहीं। तब मेरी वाणी (स्तुति) का क्या सामर्थ्य है? मेरी वाणी आपको चमत्कृत करे इसकी कोई सम्भावना नहीं है? तो फिर तुम क्यों स्तुति करना चाहते हो? इस पर कहा, हे पुरमथन! आपके गुणकथन बड़े ही पवित्र एवं पुण्यमय हैं। मैं उन गुणकथन के पुण्य के प्रभाव से अपनी वाणी को पवित्र करता हूँ, न कि आपको चमत्कृत करने के लिए स्तुति करता हूँ।

ऊपरोक्त तीन श्लोकों से यह निर्धारित हुआ कि आपकी स्तुति जो मैं कर रहा हूँ इसमें कोई दोष नहीं है। स्तुति हो भी सकती है और मुझे करने का अधिकार भी है। मैं निरहंकार होकर स्तुति कर रहा हूँ। अब यहाँ से आगे स्तुति प्रारम्भ हो रही है।

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु।
अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः॥४॥

अन्वयार्थः वरद! = हे अभीष्ट फल देनेवाले कर्मफलाध्यक्ष! **इह** = इस संसार में, **एके जडधियः** = कुछेक जड़ बुद्धिवाले लोग, **जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्** = जगत् को उत्पन्न, पालन और संहार करनेवाला, **त्रयीवस्तु** = तीनों वेदों के द्वारा प्रतिपादित, **गुणभिन्नासु** = सत्त्वादि गुणों के भेद से भिन्न-भिन्न, **तिसृषु** = तीनों (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र), **तनुषु** = शरीरों में, **व्यस्तम्** = विभाजित हुआ, **यत् तव** = जो आपका, **ऐश्वर्यम्** = ऐश्वर्य

(माहात्म्य) है, **तद् विहन्तुम्** = उसका खण्डन करने के लिए, **अरमणीम्** = अशोभनीय होती हुई भी, **अभव्यानाम्** = भाग्यहीन (नीच बुद्धि) लोगों को, **रमणीयाम्** = मनोहर (अच्छी) लगनेवाली, **व्याक्रोशीम्** = आक्षेपपूर्ण (कपोलकल्पित) बातें, **अस्मिन्** = आपके माहात्म्य के विषय में, **विदधते** = करते हैं।

शिवतोषिणी

हे वरद! भक्तों को वर देनेवाले महादेव! इस संसार में कुछ लोग ऐसे हैं जिनके भाग्य फूटे हैं अर्थात् वे नास्तिक हैं। क्योंकि आपका जो प्रत्यक्ष ऐश्वर्य है, वह उनको दीखता नहीं। आपके प्रत्यक्ष रूप का भी खण्डन करने में लगे रहते हैं। जगत् को उत्पन्न करनेवाला, पालन करनेवाला और संहार करनेवाला आपका जो ऐश्वर्य है, यह प्रत्यक्ष है। जड़ जगत् में जो इतनी व्यवस्था दीख रही है, एक-एक शरीर का इतना विलक्षण निर्माण हो रहा है। कोई माता-पिता कह सकते हैं कि इस बालक को हमने बनाया? जो आपका ही ऐश्वर्य है वह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। इतना ही नहीं, बल्कि शास्त्र-प्रमाण से भी आप सिद्ध हैं। **'त्रयीवस्तु'** यहाँ त्रयी का अर्थ है तीनों वेद - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद; अथर्ववेद इनसे अलग नहीं है। **त्रय्या प्रतिपाद्यं वस्तु इति त्रयीवस्तु**। इस प्रकार आपका जो ऐश्वर्य है, वह वेद के द्वारा भी प्रतिपादित है।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति।
(तैत्ति.उप.-३.१.१)

जिससे ये भूत उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न प्राणी जिससे जीवित रहते हैं और विनाशकाल में जिसमें गमन करते हैं और प्रवेश करते हैं, उसकी जिज्ञासा करनी चाहिए, वही ब्रह्म है। इन वेदवाक्यों से भी आपकी सिद्धि हो रही है और एक होते

हुए भी आप अलग-अलग गुणों का आश्रय लेकर अलग-अलग शरीर धारण करते हैं। सत्त्वगुण को लेकर विष्णु बनकर पालन करते हैं। रजोगुण को लेकर ब्रह्मा बनकर उत्पन्न करते हैं और तमोगुण को लेकर रुद्र बनकर संहार करते हैं। इस प्रकार के प्रत्यक्ष और वेदप्रमाण से सिद्ध आपके ऐश्वर्य का खण्डन करने में लगी उन जड़ बुद्धिवालों (जिनकी बुद्धि चैतन्य का ग्रहण नहीं करती जड़ का ही ग्रहण करती है) की वाणी रमणीय (अच्छी) न होती हुई भी नीच बुद्धिवाले, भाग्यहीन जीवों को रमणीय लगती है। वस्तुतः तो उनकी वाणी बकवाद है।

व्याक्रोशीम्- आक्षेपशून्य को आक्षेप लगाए इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है। एक पद आया है **विदधते** - इसका आत्मनेपद में प्रयोग होने से फल कर्तृगामी होगा। अर्थात् जो आपके विषय में आक्षेप लगाते हैं वे स्वयं ही आक्षेप के अधिकारी हैं।

अब नास्तिकों के व्याक्रोश (कुतर्क) का स्वरूप अगले श्लोक द्वारा दिखाते हुए पुष्पदन्ताचार्य स्तुति करते हैं :-

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च।
अतर्क्यैश्वर्येत्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः।।५।।

अन्वयार्थः सः = वह, **धाता** = विधाता (परमात्मा), **खलु**= निश्चय ही, **किमीहः** = किस इच्छावाला हो, **किंकायः** = किस प्रकार का शरीर धारणकर, **किमाधारः** = किस आधार पर, **किमुपायः** = किन साधनों (निमित्त कारणों) से, **च किमुपादानः** = और किन समवायी कारणों से, **त्रिभुवनम्** = तीनों लोकों को, **सृजति** = बनाता है। **इति** = इस प्रकार, **अयम्** = यह, **कुतर्कः** = कुतर्क, **अतर्क्यैश्वर्ये**= तर्क द्वारा नहीं जानने योग्य ऐश्वर्यवाले, **त्वयि** = आपके विषय में, **अनवसरदुःस्थः** = अवसर नहीं

मिलने पर अस्वस्थ (डाँवाडोल) होता हुआ भी, **जगतः** = संसार को , **मोहाय** = मोहित करने के लिए, **कांश्चित् हतधियः** = कुछेक नष्ट बुद्धिवाले लोगों को, **मुखरयति** = वाचाल बना देता है।

शिवतोषिणी

हे वरद! जड़ बुद्धिवाले नास्तिक लोग इस प्रकार के प्रश्न करते हैं कि तुम आस्तिक लोग कहते हो कि ईश्वर ने जगत् को बनाया। तुम्हारा ईश्वर तो आप्तकाम है, तब उसको इच्छा कैसे हो गई? वह धाता किस इच्छावाला होकर जगत् को रचता है? किस शरीरवाला होकर उसने जगत् को बनाया? उसके पास उपकरण क्या थे? जगत्-निर्माण के लिए ईश्वर के द्वारा कौन-सी सामग्री प्रयोग में लाई गई? उसने किस आधार पर बैठकर जगत् की रचना की? यदि कुम्हार को घड़ा बनाना है तो पहले वह घड़ा बनाने की इच्छा करता है, पृथ्वी पर बैठता है, मिट्टी लेकर चाक पर रखकर घुमाता है, तब घड़ा बनता है। ईश्वर को तो इतना बड़ा जगत् बनाना है, वह कैसे बनाएगा?

परन्तु यह उन लोगों का कुतर्क मात्र है। उनकी जितनी भी शंकाएँ हैं, सब जीव के विषय में हो सकती हैं, परन्तु आपका ऐश्वर्य तो अतर्क्य है, तर्क से कोई उसे जानना चाहे तो असम्भव है। किसी योगी ने संकल्प से कोई वस्तु बनाई तो वहाँ क्या समाधान होगा कि वस्तु कैसे बनाई? आपका ऐश्वर्य तो इतना बड़ा है कि तर्क से उसको जाना भी नहीं जा सकता है। वहाँ तो नास्तिक लोगों को आपके विषय में कुतर्क करने का अवसर भी नहीं मिलता है। इसलिए उनका वह कुतर्क अस्वस्थ होते हुए भी, संसार को भ्रमित करने के लिए कुछ नष्ट-बुद्धिवाले लोगों को वाचाल बना देता है।

****

अब आगे युक्ति द्वारा पुष्पदन्ताचार्यजी सिद्ध करते हैं कि ईश्वर ही जगत् का कर्ता है। अन्य जीव या कोई जड़धर्मी जगत् का कर्ता हो नहीं सकता।

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति।
अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे।।६।।

अन्वयार्थ : अमरवर! = हे देवताओं में श्रेष्ठ महादेव! **अवयववन्तः** = अवयवयुक्त होते हुए, **अपि** = भी, **लोकाः** = पृथ्वी आदि (चौदह भुवन) लोक, **किम्** = क्या (आक्षेप अर्थ में), **अजन्मानः** = उत्पत्ति रहित हैं? **अधिष्ठातारम्** = कर्ता को, **अनादृत्य** = अनादर करने (न मानने) पर, **किम्** = क्या, **जगताम्** = जगत् की, **भवविधिः** = रचना, **भवति** = हो सकती है? **वा** = अथवा, **अनीशः** = अनीश्वर (जीव), **कुर्यात्** = (संसार की रचना) कर सके, (तो) **भुवनजनने** = भुवनों को उत्पन्न करने में, **कः परिकरः**= क्या सामग्री है? **यतः** = जिससे, **इमे मन्दाः** = ये मन्द बुद्धि लोग, **त्वाम् प्रति** = आपके विषय में, **संशेरते** = संशय करते हैं।

शिवतोषिणी

पुष्पदन्ताचार्यजी कहते हैं - हे देवताओं में श्रेष्ठ! यह जो अवयवोंवाला (अंगों के सहित) जगत् दीखता है, क्या जन्म से रहित है? अर्थात् कभी जन्म से रहित हो नहीं सकता। वस्तुतः अवयवोंवाला जो भी पदार्थ है निश्चय ही वह किसी के द्वारा बनाया जाता है, यह एक सिद्धान्त है। इसलिए सिद्ध होता है कि इस जगत् की उत्पत्ति हुई है। यदि इतने विलक्षण जगत् की उत्पत्ति हुई है तो क्या वह किसी चेतन के बिना सम्भव है? अर्थात् बिना किसी चेतन अधिष्ठाता के इतनी

विलक्षण सृष्टि हो नहीं सकती। सूर्य, चन्द्रमा अपने समय पर उदय-अस्त हो रहे हैं, समुद्र अपनी मर्यादा में रहता है। इससे ज्ञात होता है कि कोई-न-कोई चेतनशक्ति इसके पीछे है।

चेतन दो प्रकार के हैं - एक जीव और दूसरा ईश्वर। यदि जीव को जगत् का कर्ता मानें, तो उसके पास सामग्री क्या है? वस्तुतः जीव जब मकान भी बनाता है तब उसे ईंट-पत्थर की आवश्यकता पड़ती है, तब वह इतना बड़ा जगत् कैसे बनाएगा? इसलिए इस जगत् का कर्ता जीव हो ही नहीं सकता है क्योंकि जीव के पास जगत्-रचना के लिए सामग्री है ही नहीं। इसलिए इस जगत् के कर्ता आप (ईश्वर) ही हो सकते हैं। फिर भी ये मन्दबुद्धि, भाग्यहीन लोग आपके विषय में संशय करते हैं। वस्तुतः आपके प्रति संशय करना ही उन लोगों की मन्दबुद्धि का द्योतक है। वे लोग अनुमान भी नहीं कर सकते हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति आपके प्रति संशय कर ही नहीं सकता है क्योंकि तर्क और अतर्क दोनों के द्वारा आपकी सिद्धि होती है।

****

पीछे के तीन श्लोकों में नास्तिकों के मतों का यथार्थ रीति से खण्डन करके ईश्वर की सत्ता को भली-भाँति सिद्ध करने के लिए आगे के श्लोक में ईश्वरवादी आस्तिकों के अलग-अलग मतों का खण्डन करके ऐक्य दिखाया है। यदि अलग-अलग मत वर्तमान हैं, तो निश्चय करना कठिन होगा कि वास्तव में ईश्वर कौन हैं?

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।७।।

अन्वयार्थ : त्रयी = सभी वेद, **सांख्यम्** = सांख्यदर्शन, **योगः** = योगशास्त्र, **पशुपतिमतम्** = पाशुपतशास्त्र (शैव सिद्धान्त), **वैष्णवम्** = नारद-पाञ्चरात्रादि वैष्णवमत, **इति** = इस प्रकार, **प्रस्थाने** = गमनयोग्य मार्गों (मतान्तरों) के, **प्रभिन्ने** = बहुविध होने पर, **इदम् परम्** = यह (मेरा मत) सबसे श्रेष्ठ है, **च अदः पथ्यम्** = और यह (हमारा मत) दूसरों की अपेक्षा हितकर, सेवन करने योग्य है, **इति रुचीनाम्** = इस प्रकार इच्छाओं की, **वैचित्र्यात्** = विचित्रता से, **ऋजुकुटिलनानापथजुषाम्** = सीधे-टेढ़े अनेक मार्गों से चलनेवाले, **नृणाम्** = मनुष्यों के, **पयसाम्** = नदियों का, **अर्णवः इव** = समुद्र जैसे (गन्तव्य) है, वैसे ही, **एकः त्वम्** = एकमात्र आप ही, **गम्यः असि** = गन्तव्य (स्थान) हो।

शिवतोषिणी

भारतीय दर्शन में आस्तिकों के भी कई मत हैं। इन सबका पुष्पदन्ताचार्यजी भिन्न-भिन्न रूप में खण्डन करते हैं, सभी का एक ही गन्तव्य स्थान है। त्रयी एक मत है। त्रयी कहते हैं वेदों (ऋक्, यजु, साम) को, अर्थात् वैदिक मत। वेदवादी (मीमांसक) लोग कहते हैं-वेदपाठ करो,वेदानुसार कर्म करो। उससे स्वर्ग की प्राप्ति होगी। पुण्य समाप्त होगा, फिर पृथ्वीलोक में आकर पुनः कर्म करते रहो। वेदवादी लोग इसी प्रकार का सिद्धान्त निर्धारित करते हैं।

एक सांख्य-शास्त्र है, उसका सिद्धान्त है कि पुरुष-प्रकृति-विवेक होगा तो मुक्ति मिलेगी। प्रकृति, महत्-तत्त्व (प्रकृति से उत्पन्न), अहंकार (महत्-तत्त्व से उत्पन्न), पञ्चतन्मात्रा, मन, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च

कर्मेन्द्रियाँ (ये सभी अहंकार से उत्पन्न हैं), पञ्च महाभूत (तन्मात्राओं से उत्पन्न), ये २४ तत्त्व हैं। पुरुष शुद्धबुद्धमुक्त स्वभाववाला है, पर वह अपने को प्रकृति के संयोग से बद्ध समझता है और जब अपने को प्रकृति से पृथक् कर लेता है, तो मुक्त होता है। उनका कहना है कि वेदपाठ से मुक्ति नहीं मिलती और न ही वैदिक कर्मकाण्ड से। पुरुष (चेतन) और प्रकृति (जड़) के विवेक के बिना मुक्ति मिलना असम्भव है। सांख्य के अनुसार प्रकृति ही भोग और मोक्ष देती है। जब तक अज्ञान है तब तक भोग देती है और ज्ञान होने पर मोक्ष देती है।

पातञ्जल योग के अनुसार केवल बुद्धि से विचार करने से कुछ होना नहीं है। इससे अनुभूति नहीं होगी, इसलिए पहले यम-नियम का पालन करो, आसन-प्राणायाम का अभ्यास करो, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान का अभ्यास करो, तब कहीं समाधि में जाओगे और जब समाधि में जाओगे तब मुक्ति मिलेगी।

पाशुपत मतवाले कहते हैं - जीव पशु है, शिव पशुपति हैं। मायारूपी पाश से पशु को पशुपति ने बाँधा है। उस पशुपति महादेव की आराधना करो तो वह प्रसन्न होकर पाश को काट देगा, तब मुक्ति हो जाएगी। अन्य कोई साधन नहीं है मुक्त होने का। इसी प्रकार वैष्णव कहते हैं कि विष्णु की आराधना करो तो मुक्ति मिले अन्यथा मुक्ति सम्भव नहीं है।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न मतवाले अपने-अपने मत को श्रेष्ठ बताते हैं और उसे पथ्य (चलने योग्य मार्ग) कहते हैं। पुष्पदन्ताचार्यजी कहते हैं ये लोग व्यर्थ ही झगड़ते हैं। जैसे जितनी भी नदियाँ हैं, उनका गन्तव्य स्थान एक समुद्र ही है। कोई भी नदी चाहे किसी भी मार्ग से आए, दूर या समीप से आए उसकी गति को विराम तो समुद्र में पहुँचकर ही लगेगा। **ऋजुकुटिलनानापथजुषाम्** - सरल और टेढ़े मार्गों से प्रीति करनेवाले, **जुष्** धातु प्रीति और सेवन करने के अर्थ में है। इसी प्रकार सीधे-टेढ़े अनेक मार्गों से चलनेवाले लोगों का गन्तव्य आप ही हैं। आप तक पहुँचने पर ही जन्म-मरणरूपी गति को विराम लगेगा।

शंका हो सकती है कि एक ही मार्ग क्यों नहीं, अनेक क्यों हैं? इसका

समाधान है रुचि की विचित्रता। अलग-अलग जीव की रुचि अलग-अलग है। यह सीधा और टेढ़ा अपनी रुचि के अनुसार ही लगता है। किसी को योग सीधा लगता है, जपादि कठिन लगते हैं। किसी को जप सीधा लगता है, योगादि कठिन लगते हैं।

****

उपरोक्त विधि से सभी मत-मतान्तरों तथा शंकाओं के समाधानपूर्वक शिवजी के स्वरूप का निरूपण करके अब गन्धर्वराज सगुणरूप में विद्यमान परमात्मा की स्तुति करते हैं।

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम्।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति।।८।।

अन्वयार्थ : **वरद!** = हे वरदान देनेवाले! **महोक्षः** = बूढ़ा बैल, **खट्वाङ्गम्** = खाट का एक पाया, **परशुः** = कुल्हाड़ा, **अजिनम्** = मृगचर्म, **भस्म** = भस्म (चिता की राख), **फणिनः** = सर्प, **च कपालम्** = और मनुष्य की खोपड़ी, **इति इयत्** = इस प्रकार बस इतनी ही, **तव** = आपके पास, **तन्त्रोपकरणम्** = कुटुम्बपालन की सामग्री है, **तु** = किन्तु, **सुराः** = देवता समूह, **भवद्भ्रूप्रणिहिताम्** = आपकी कृपा-कटाक्ष से प्राप्त, **ताम्-ताम्** = उस-उस अलौकिक, **ऋद्धिम्** =

ऐश्वर्य को, **दधति** = उपभोग करते हैं (फिर भी वे अलौकिक ऐश्वर्य आपको आकर्षित नहीं करते), **हि** = क्योंकि, **स्वात्मारामम्** = अपने स्वरूप में रमण करनेवाले को, **विषयमृगतृष्णा** = भोगविषयक मृगतृष्णा, **न भ्रमयति** = भ्रमित नहीं कर सकती है।

शिवतोषिणी

हे वर देनेवाले औघड़दानी! सभी देवता तो देव हैं, पर आप महादेव हैं क्योंकि सभी देवताओं को आपने ऐश्वर्य प्रदान किया और स्वयं की गृहस्थी ऐसी है कि रहने के लिए एक मकान भी नहीं बनाया। आपके पास तो सवारी करने के लिए एक बूढ़ा बैल है। दो भी नहीं, मात्र एक ही बैल है जिससे गाड़ी भी नहीं रख सकते। आपके पास चारपाई भी नहीं, उसका एक पाया ही है। योगी लोग लकड़ी का योगदण्ड रखते हैं, जो कि पाये के समान होता है। उसको आशा बोलते हैं। महादेव खाट के पाये को ही आशा के रूप में प्रयोग करते हैं।

धूना जलाने के लिए लकड़ी की आवश्यकता पड़ती है इसलिए लकड़ी काटने के लिए एक फरसा (कुल्हाड़ा) रखते हैं। वस्त्र के रूप में मात्र एक मृगचर्म रखते हैं। चन्दन या 'पाउडर' की जगह आप चिता की भस्मी लगा लेते हैं। आभूषण की जगह आपने साँपों को ही धारण कर लिया है। भोजनादि के लिए बर्तन की जगह आपने मनुष्य की खोपड़ी को ही रखते हैं। बस, मात्र ये सात वस्तुएँ ही आपकी गृहस्थी चलाने के साधन हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि आप दरिद्र हैं। आपका सामर्थ्य तो इतना है कि जिन-जिन देवताओं ने जो-जो दिव्य ऐश्वर्य प्राप्त किया, वह आपके कृपा-कटाक्ष से ही प्राप्त किया और उसी का वे उपभोग कर रहे हैं।

किसी ने आपकी आराधना से स्वर्ग का पद प्राप्त किया, किसी ने सूर्यलोक और किसी ने वैकुण्ठ। जैसा-जैसा जो अधिकारी था, आपने उसको

वह पद (ऐश्वर्य) दिया। परन्तु स्वयं आपके विरक्त रहने का रहस्य यही है कि जो स्वात्मा में रमण करता है, स्वरूप में विश्रान्त हो जाता है, उस योगी को यह मृगतृष्णा के जल के समान कभी तृप्त न कर सकनेवाले विषय मोहित (भ्रमित) नहीं कर सकते हैं। जब योगी को ही मोहित नहीं कर सकते, तब आप तो महायोगी हैं, आपको कैसे मोहित कर सकेंगे? जब तक व्यक्ति बहिर्मुख होता है तभी तक उसको बाहर का ऐश्वर्य अच्छा लगता है।

उपरोक्त जो महादेव के पास सात वस्तुएँ बताई गई हैं, उनका तत्त्वार्थ इस प्रकार है - **महोक्षः** (बूढ़ा बैल) - धर्म है। जहाँ पर धर्म की प्रतिष्ठा होती है, वहीं महादेव बैठते हैं। **खट्वाङ्गम्** (आशा) - यह योगी का लक्षण है। पहले योगी लोग रखते थे। **परशुः** - राग-द्वेष, यही जगत् को हिला रहे हैं। उनको महादेव ने अपने हाथ में वश में करके रखा है। **अजिनम्** - जीवभाव, उसको बाधित करके तुरीयरूप महादेव ने आसन बना लिया है। **चिताभस्म** - इससे महादेव संकेत करते हैं कि इस शरीर से क्या मोह करते हो? यह तो भस्म है। **फणिनः** - क्रोध, जिस क्रोध से सम्पूर्ण जगत् आतंकित है उसे महादेव ने आभूषण बना रखा है। महादेव संहार के समय जो क्रोध करते हैं, वह उनका आभूषण है। वह संहार भी कृपाशक्ति से ओत-प्रोत रहता है। **कपालम्**- इसके द्वारा महादेव बताते हैं कि जिस सिर का आप अहंकार करते हैं, वह तो कपाल है।

****

यहाँ तक भगवान् शिव के सगुण-साकार स्वरूप का वर्णन करके अब स्तुति के विभिन्न प्रकारों का कथन करते हुए पुष्पदन्ताचार्यजी कहते हैं :-

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये।
समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवञ्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता॥९॥

अन्वयार्थ : **पुरमथन! =** हे त्रिपुरान्तक! **कश्चित् =** कोई सांखयादि, **इदम् सर्वम् =** इस सम्पूर्ण जगत् को, **ध्रुवम् =** नित्य, **गदति = कहता है, तु अपरः =** किन्तु दूसरे बौद्धादि, **सकलम् =** अशेष (समस्त) जगत् को, **अध्रुवम् =** अनित्य, **परः =** अन्य नैय्यायिकादि, **जगति व्यस्तविषये =** संसार के भिन्न-भिन्न विषयों में, **ध्रौव्याध्रौव्ये=** नित्यत्व-अनित्यत्व दोनों प्रकार से कहते हैं। (इस प्रकार) **एतस्मिन् =** पूर्वोक्त इन, **समस्ते =** सभी मतवादों में, **विस्मितः इव-अपि =** आश्चर्यचकित के जैसा होता हुआ भी, **तैः त्वाम् =** उन्हीं मतान्तरों द्वारा आपकी, **स्तुवन् =** स्तुति करता हुआ, **न जिह्रेमि =** मैं लज्जित नहीं होता हूँ, **खलु मुखरता =** निश्चय ही वाचालता, **ननु धृष्टा =** ढीठ ही होती है।

शिवतोषिणी

श्रीपुष्पदन्ताचार्य कहते हैं कि भिन्न-भिन्न प्रकार के दर्शनों के भिन्न-भिन्न प्रकार के मत हैं। कोई कहते हैं यह सम्पूर्ण जगत् नित्य है और कुछ अन्य दर्शनवादी इस समस्त जगत् को अनित्य कहते हैं। सांख्य-दर्शनवाले प्रकृति को नित्य मानते हैं और बौद्ध-दर्शनवाले प्रतिक्षण विनाशशील मानते हैं। बौद्ध-दर्शन में एक मत शून्यवाद भी है जो मानते हैं कि सब शून्य है। एक अन्य नैय्यायिकों का मत भी है जो इस सम्पूर्ण जगत् को नित्य और अनित्य दोनों ही मानते हैं। कार्यरूप में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि अनित्य हैं और परमाणुरूप में ये नित्य हैं। आकाश, काल ये नित्य ही हैं। इस प्रकार कुछ को नित्य और कुछ को अनित्य मानते हैं।

हे पुरमथन! मैं इन मतवादों की चर्चा करता हुआ इनके द्वारा विस्मित होकर आपकी स्तुति करते हुए लज्जित भी नहीं हो रहा हूं। चला तो था आपकी स्तुति करने और चर्चा इन मतान्तरों की करने लगा। निश्चय ही वाचालता ढीठ होती है। उसमें व्यक्ति न कहने योग्य बात भी कह देता है। व्यक्ति जब किसी के अधिक समीप होता है तो वह उसके प्रति ज्यादा वाचाल हो जाता है। ऐसा ही मेरे साथ भी हुआ है। भगवन्! आप मुझे क्षमा करें।

****

सामान्य प्राणियों की तो बात ही क्या? आपका दर्शन सृष्टिकर्ता ब्रह्मा तथा जगत्पालक विष्णु को भी आपके कृपाकटाक्ष से ही हुआ है। इस अभिप्राय को लेकर गन्धर्वाधिपति कहते हैं :-

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति।।१०।।

अन्वयार्थ : गिरिश! = हे भगवन् गिरिश! (गिरौ शेते इति गिरिशः), **अनलस्कन्ध-वपुषः तव =** अग्निपुञ्ज के समान देदीप्यमान आकृतिवाले आपके, **ऐश्वर्यम् यत् =** ऐश्वर्य को जब, **परिच्छेत्तुम् =** परखने के लिए (अन्त पाने के लिए), **यत्नाद्-उपरि =** यत्न से ऊपर, **विरिञ्चिः =** ब्रह्मा और, **अधः हरिः =** नीचे विष्णु, **यातौ =** गए, (किन्तु) अनलम् = (वे अन्त पाने में समर्थ नहीं हुए), **ततः =**

तदनन्तर, **भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्याम्** = भक्ति और श्रद्धा के भार से विनम्र होकर स्तुति करनेवाले, **ताभ्याम्** = उन दोनों के समक्ष, **यत्** = जो, **स्वयम्** = स्वयं ही आप, **तस्थे** = खड़े हो गए (प्रकट हो गए)। **तव अनुवृत्तिः** = शरणागतों द्वारा की गई आपकी सेवा, **किम् न फलति** = क्या फल नहीं देती है? अर्थात् सभी फल देनेवाली होती है।

शिवतोषिणी

सृष्टि के आदि में विष्णु के नाभि-कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। आगे सृष्टि करने की इच्छावाले ब्रह्मा विचार कर रहे थे कि सृष्टि कैसे की जाए? तभी उन्होंने भगवान् विष्णु के रूप में सोए हुए एक पुरुष को देखा। ब्रह्मा ने उनसे कहा, 'तुमको मर्यादा का थोड़ा भी ज्ञान नहीं है कि बड़ों को प्रणाम करना चाहिए।' भगवान् विष्णु ने कहा, 'पहले आप अपनी उत्पत्ति के विषय में जानिये, वह मेरे नाभि-कमल से हुई है। इसलिए मैं आपका पिता हूँ। आप मुझे प्रणाम करें।' ब्रह्मा ने कहा, 'यह बात ठीक नहीं है। मैं जगत् का पितामह हूँ, इसलिए मैं श्रेष्ठ हूँ। तुम्हारी नहीं, मेरी पूजा होनी चाहिए।'

इस प्रकार दोनों में विवाद बढ़ता देखकर महादेव एक ज्योतिपुञ्ज रूप में प्रकट हो गए। यही प्रथम ज्योतिर्लिङ्ग का आविर्भाव था। तब दोनों विवाद छोड़कर विचारने लगे - यह क्या है? ब्रह्मा ने कहा, 'कोई हमारी परीक्षा लेने के लिए आया है कि हममें से कौन श्रेष्ठ है। इसका अन्त पाने के लिए तुम नीचे जाओ और मैं ऊपर जाता हूँ। जो अन्त का पता लगा लेगा, वही श्रेष्ठ होगा।' इस प्रकार ब्रह्मा ऊपर की ओर तथा विष्णु नीचे की ओर चले। दोनों एक हजार दिव्य वर्षों तक चलते रहे।

विष्णु तो बिना अन्त पाए लौटकर आ गये। पर ब्रह्मा बीच में से ही लौटकर आ गये तथा साथ में गवाह के रूप में एक केवड़ा-पुष्प और एक गौ को ले आए कि यह केवड़ा-पुष्प ज्योतिर्लिङ्ग के ऊपर चढ़ा था। ब्रह्मा ने कहा कि मैं इसका अन्त खोजकर आया हूँ, इसलिए मैं श्रेष्ठ हूँ। तब महादेव प्रकट हुए और ब्रह्मा पर क्रोधित होकर उनके पाँच में से एक सिर को काट लिया तथा कहा, 'तुम झूठ बोले हो, तुम्हारी कभी पूजा नहीं होगी, विष्णु की ही पूजा होगी। गौ को कहा कि तुम्हारा मुख अशुद्ध रहेगा। केवड़ा को शाप दिया कि यह पुष्प मुझपर नहीं चढ़ेगा।'

तब दोनों ही भक्तिपूर्वक महादेव की स्तुति करने लगे। यह पौराणिक कथा है। इस प्रसंग में पुष्पदन्ताचार्यजी कहते हैं - हे भगवन्! अग्निस्तम्भ शरीरवाले (ज्योतिर्लिङ्गरूप) आपके ऐश्वर्य को मापने के लिए विरञ्चि (ब्रह्मा) ऊपर की ओर गए और विष्णु नीचे की ओर गए। दोनों अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य के साथ गए, परन्तु आपके अग्निस्तम्भरूप ऐश्वर्य की सीमा जानने में असमर्थ ही रहे। तब वे दोनों आपकी महिमा समझे और भक्ति एवं श्रद्धा के भार से विनम्र वाणी द्वारा आपकी स्तुति करने लगे। (क्योंकि यदि हृदय में श्रद्धा और विश्वास न हो तो वाणी वजनदार नहीं होती है)। इस प्रकार स्तुति करते हुए ब्रह्मा और विष्णु दोनों के समक्ष आप स्वयं प्रकट हो गए। आप इसलिए प्रकट हो गए कि उन दोनों ने शरणापन्न होकर आपका अनुगमन किया। यह निश्चित बात है कि आपका अनुगमन (शरणागत होकर सेवा) कोई कर ले, फिर क्या फल नहीं मिलता है? अर्थात् सब कुछ मिल जाता है। यदि उनको आपका दर्शन हो गया तो कोई आश्चर्य नहीं है।

'भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां ताभ्याम्' इन पदों का दो प्रकार का अर्थ निकाल सकते हैं। एक अर्थ चतुर्थी विभक्ति को लेकर ऊपर कर दिया गया है। तृतीया विभक्ति मानकर इस प्रकार अर्थ होता है कि श्रद्धा और भक्ति के भार से युक्त वाणी द्वारा स्तुति करते ब्रह्मा-विष्णु **'स्वयं तस्थे'** अर्थात् खड़े हो गए। इस प्रकार आपकी स्तुति करने लगे। तब आपने दर्शन दिए।

अब रावण नामक असुर पर भी भगवान् महादेव का अनुग्रह दिखाते हुए पुष्पदन्ताचार्यजी आगे स्तुति करते हैं :-

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान्।
शिर:पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबले:
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम्॥११॥

अन्वयार्थ : त्रिपुरहर! = हे! त्रिपुरान्तक! **दशास्य:** = रावण ने, **यत्** = जो, **अयत्नाद्**= थोड़े प्रयत्न से ही, **त्रिभुवनम्** = तीनों लोकों को, **अवैरव्यतिकरम्** = शत्रुहीन निष्कण्टक, **आपाद्य** = बनाकर, **रणकण्डूपरवशान्** = युद्ध करने की खुजलाहट के वश हुई, **बाहून् अभृत** = बीस भुजाओं को धारण किया था, **शिर:पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबले:** = अपनी मस्तकरूप कमल पंक्तियों को काटकर आपके पादपंकजों में भेंट करने के फलस्वरूप, **स्थिराया: त्वद्भक्ते:** = निश्चल हुई आपकी भक्ति का ही, **इदम्** = यह, **विस्फूर्जितम्** = फल है।

शिवतोषिणी

हे त्रिपुरासुर को मारनेवाले त्रिपुरहर! आप इसलिए महादेव हैं कि देवता और असुर दोनों ही आपके भक्त हैं, यही आपमें एक विलक्षणता है। ये दोनों पक्ष परस्पर शत्रु हैं, पर आपके दोनों ही भक्त हैं। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र भी आपकी भक्ति करते हैं और रावण, बाणासुर आदि भी आपकी भक्ति करते हैं। यहाँ पर

रावण के विषय में चर्चा है कि दस मुखवाले रावण ने तीनों लोकों को वैर के व्यवधान से रहित (शत्रुहीन) कर दिया, अब कोई शत्रु ही नहीं शेष रहा तो युद्ध किससे करे ?

युद्ध करने के लिए उसके हाथों में खुजली चलने लगी। किसी-किसी को लड़ाई करने के लिए खुजली चलने लगती है। उससे लड़ाई किए बिना रहा ही नहीं जाता। इसी प्रकार रावण के साथ हुआ तो युद्ध की इच्छा के परवश होकर उसने बीस भुजाओं को धारण किया। परन्तु कोई युद्ध करनेवाला ही नहीं मिल रहा था। यह सहज ही नहीं हुआ। इसमें कुछ रहस्य है। वह यह है कि उसने जो अपने सिररूपी कमलपंक्तियों को काटकर आपके चरणकमलों में बड़ी ही भक्ति से भेंट किया, उसी उपहार के फलस्वरूप आपके प्रति उसकी निश्चल भक्ति हुई। उस निश्चल भक्ति का ही यह प्रभाव है कि तीनों लोकों में उससे लड़नेवाला कोई नहीं रहा।

****

इस प्रकार भक्तप्रिय भगवान् का भक्तिभाववाले रावण पर अनुग्रह बताकर गर्व करने पर उसी रावण के प्रति भगवान् का निग्रह दिखाते हुए गन्धर्वश्रेष्ठ कहते हैं -

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः।
अलभ्यापातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः।।१२।।

अन्वयार्थ : त्वदधिवसतौ = आपके निवास-स्थान, **कैलासे**

= कैलास पर्वत में, **अपि** = भी, **त्वत्सेवासमधिगतसारम्** = आपकी सेवा से ही प्राप्त अतुल बलवाले, **भुजवनम्** = अनेकों भुजाओं के समूह को, **बलात्** = हठपूर्वक (घमण्ड से), **विक्रमयतः** = विक्रमण करते (आजमाते) हुए, **अमुष्य** = उस रावण को, **प्रतिष्ठा** = स्थिति, **त्वयि** = आपके, **अलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि** = अलसाते हुए पैर के अँगूठे के अग्रभाग मात्र हिल जाने पर, **पाताले अपि** = पाताल में भी, **अलभ्या आसीत्** = प्राप्त न हो सकी थी, **ध्रुवम्** = यह बात सत्य है कि, **उपचितः** = ऐश्वर्यवान् होकर, **खलः** = दुष्ट (कृतघ्न) पुरुष, **मुह्यति** = मोहित हो जाता है।

शिवतोषिणी

हे भगवन्! आपके निवास-स्थान कैलास पर्वत में भी आपकी सेवा-उपासना इत्यादि से प्राप्त शक्तिवाली अनेकों भुजाओं के बल के कारण बड़े ही अहंकार से परीक्षा करनेवाले रावण की आपने लेटे-लेटे बिना प्रयत्न ही आलस्यपूर्वक पैर के अँगूठे के अग्रभाग से दबाकर वह गति की जिससे कि उसे पाताल में भी स्थिति प्राप्त नहीं हुई। यह बड़ा आश्चर्य है कि आपकी कृपा से प्राप्त हुए बल को आपके ऊपर ही उसने कैसे परीक्षण किया? इसका अर्थ यह है कि जो दुष्ट लोग होते हैं, वे किसी के द्वारा उपकृत होने पर भी उसका अपकार करने को उद्यत रहते हैं क्योंकि वे ऐश्वर्य प्राप्त करके मोहित हो जाते हैं। इसलिए उनमें कृतघ्नता आ जाती है।

पुराण-प्रसिद्ध कथा है कि रावण इतना बलवान था कि कोई उससे लड़नेवाला नहीं मिला। एक बार उसको नारदजी मिल गए। उसने नारदजी से कहा, 'महाराज! मेरी बराबरी का कोई है? युद्ध करने के लिए हाथों में खुजली

चल रही है।' नारदजी ने कहा, 'महादेव को लंका में ले चलो। बस, कैलास-पर्वत को उठा लो और लंका में ले जाओ। आपकी भुजाओं में कितनी शक्ति है यह आपको पता चल जाएगा और महादेव आपके घर आ जाएँगे। आपको लंका से दौड़कर बार-बार कैलास नहीं जाना पड़ेगा।' रावण ने कहा, 'ठीक है, यह बात हमें स्वीकार है।' उसने जाकर कैलास पर्वत को उखाड़ना शुरू किया। महादेव लेटे थे, पार्वतीजी चरण दबा रही थीं। जब पर्वत कम्पित हुआ तो पार्वतीजी भयभीत हो गयीं। महादेव ने लेटे-लेटे ही अपने चरण के अँगूठे के कोने से जरा-सा दबा दिया। रावण नीचे धँसने लगा और धँसते-धँसते पाताल में चला गया। पाताल में भी स्थिर नहीं हो पाया, तब वहीं से महादेव की प्रार्थना शुरू कर दी। फिर जाकर कहीं स्वस्थ हो पाया।

****

अहंकारी रावण पर भगवान् शिव का निग्रह दिखाकर अत्यन्त नम्रता से झुके हुए बाणासुर पर भगवान् का अनुग्रह दिखाते हुए पुष्पदन्ताचार्यजी पुनः स्तुति करते हैं।

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयस्त्रिभुवनः।
न तच्चित्रं तस्मिन्वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्या उन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः॥१३॥

अन्वयार्थ : **वरद!** = हे अभीष्ट वरदान देनेवाले शंकर! **परिजनविधेय:त्रिभुवनः** = तीनों लोकों को दास के समान स्ववश बना लेनेवाले, **बाणः यत्** = बाणासुर ने जो, **परमोच्चैः** = बहुत बढ़ी, **सतीम्** = हुई, **सुत्राम्णः** = देवराज इन्द्र की, **अपि** = भी, **ऋद्धिम्** =

सम्पत्ति को, **अधः चक्रे** = नीचे कर दिया (तिरस्कृत किया), **तत्** = वह, **त्वच्चरणयोः** = आपके चरणों में, **वरिवसितरि** = सेवाभाव से लगे हुए, **तस्मिन्** = उस बाणासुर के विषय में, **न चित्रम्** = आश्चर्यजनक नहीं है, (क्योंकि) **त्वयि** = आपके सामने, **शिरसः** = सिर को, **अवनतिः** = झुकाना, **कस्यै उन्नत्यै** = किस उन्नति के लिए, **न भवति** = नहीं होता? अर्थात् सभी उन्नतियों का कारण होता है।

शिवतोषिणी

शिवजी के बड़े असुर भक्तों में रावण के बाद बलिपुत्र बाणासुर का नाम प्रसिद्ध है। वह ऐसा बलवान था कि रावण को भी पकड़ कर रखा और रावण कुछ भी नहीं कर पाया था। बाणासुर भी त्रिपुरासुर के समान बड़ा वैज्ञानिक था। उसने आकाश में ही पुरों का निर्माण किया और सभी प्रकार की सुविधाओं के सहित धर्म की मर्यादा पूर्ण रूप से रखते हुए दैत्यों की बड़ी भारी सेना सहित वहाँ रहने लगा। भगवान् शिव का वह बड़ा भक्त था, परन्तु अन्य देवताओं के लिए उसका बड़ा आतंक था। देवता लोग उसके उपद्रव से डरकर भगवान् शिव से प्रार्थना करने लगे कि आप इस दैत्य का संहार करें। भगवान् ने कहा कि वह तो मेरा बड़ा भक्त है, मैं उसका संहार कैसे करूँ?

देवताओं ने जब बहुत आग्रह किया तो भगवान् उसको मारने के लिए तैयार हो गये। महादेव ने बाण चलाया तो उसके सभी पुर जलकर भस्म होने लगे। दैत्य-सेना सहित परिवार के लोग नष्ट होने लगे। परन्तु बाणासुर खड़ा होकर देख रहा था, किसी की रक्षा करने का प्रयास भी नहीं

कर रहा था। जब उसने देखा कि पूजागृह में रखे नर्मदेश्वर, जिनकी वह पूजा करता था, उनकी ओर अग्नि बढ़ रही है, तब उसने साहस करके नर्मदेश्वर को सिर पर रखा और पुर से नीचे कूदने को उद्यत हुआ। तभी महादेव प्रकट हो गये और कहा - अब तुमको कोई मार नहीं सकेगा क्योंकि मैं स्वयं तुम्हारी रक्षा करूँगा। आगे चलकर किसी प्रसंग से उस बाणासुर का भगवान् कृष्ण से युद्ध हुआ, तब महादेव ने उसके पक्ष से युद्ध किया और उसको मारने नहीं दिया।

इसी प्रसंग को लेकर पुष्पदन्ताचार्यजी कहते हैं - हे अभीष्ट वरदान देनेवाले महादेव! बाणासुर ने तीनों लोकों को अपने दास के समान बना लिया और कोई उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता था। इन्द्र का बड़ा भारी ऐश्वर्य (समृद्धि) भी उसकी सम्पत्ति के सामने हल्का हो गया। परन्तु आपकी चरणसेवा (उपासना) में नित्य लगे हुए बाणासुर के लिए यह कोई आश्चर्य में डालनेवाली बात नहीं है।

'त्वयि शिरसः अवनतिः कस्या उन्नत्यै न भवति।' यहाँ पर **'कस्यै उन्नत्यै'** अथवा **'कस्या (व्यक्त्याः) उन्नत्यै'** ये दो अर्थ हो सकते हैं। (संस्कृत में व्यक्ति शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होता है, अतः यहाँ पर **'कस्याः'** शब्द व्यक्ति शब्द का विशेषण है।) पहला अर्थ है कि तुम्हारे सामने सिर झुकाना किस उन्नति के लिए नहीं होता, अर्थात् सभी प्रकार की उन्नति के लिए होता है। दूसरा अर्थ यह है कि किस (व्यक्ति) की उन्नति के लिए नहीं होता, अर्थात् सभी की उन्नति के लिए होता है। यहाँ भाव यह है कि सिर की अवनति (झुकाना) सभी प्रकार की उन्नति का हेतु है।

उपरोक्त श्लोकों में महादेव के भिन्न-भिन्न-गुणप्रधान उपासक बताए हैं, सत्त्वगुणप्रधान विष्णु, रजोगुणी ब्रह्मा और तमोगुणप्रधान रावण-बाणासुर के उत्कर्ष की कथा बताकर भगवान् की बड़ी भारी महिमा बताई है। यहाँ कोई

शंका करे कि महादेव की स्तुति में इन राक्षसों के पराक्रमादि का वर्णन करने का क्या प्रयोजन है? ऐसी शंका यहाँ नहीं बनती क्योंकि महादेव के जैसे भी भक्त हैं, उनकी स्तुति उन्हें अच्छी लगती है क्योंकि महादेव में यह एक विशेषता है कि वे अपने से भी ज्यादा अपने भक्तों की प्रशंसा सुनना पसन्द करते हैं।

****

आगे कालकूट विषपान का वर्णन करते हुए पुष्पदन्ताचार्यजी भगवान् शिव की स्तुति करते हुए कहते हैं -

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः।।१४।।

अन्वयार्थ : **त्रिनयन!** = हे त्रिनेत्रधारी सदाशिव ! **अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपाविधेयस्य** = असमय ब्रह्माण्ड के नाश की सम्भावना से भयभीत हुए देवताओं और दैत्यों पर कृपा करके, **विषम्** = हलाहल विष को, **संहृतवतः** = संहार (पान) करनेवाले, **तव कण्ठे** = आपके कण्ठ में, **यः** = जो, **कल्माषः** = नीलापन, **आसीत्** = हो गया था, **सः** = वह, **श्रियम्** = (आपकी) शोभा को, **न कुरुते न** = न बढ़ाता हो ऐसी बात नहीं है (अवश्य बढ़ाता है), **अहो** = ठीक ही है (आश्चर्य से कह रहे हैं), **भुवनभयभङ्गव्यसनिनः** = लोकों के भय को नाश करने के स्वभाववाले का, **विकारः अपि** = विकार (दोष) भी, **श्लाघ्यः** = प्रशंसा करने योग्य होता है।

शिवतोषिणी

देवता और दैत्य मिलकर अमृत-प्राप्ति के लिए समुद्र-मन्थन कर रहे थे। मन्थन कर रहे थे अमृत-प्राप्ति के लिए और प्रकट विष हो गया। जगत् में यह एक भारी विडम्बना है कि व्यक्ति अमृत के लिए चलता है और पहले मिलता है - विष। जैसे, कोई सचाई से सेवा करता है, तो पहले आलोचना और विरोध सहन करना ही पड़ेगा। जो इस विष को पी नहीं सकता, वह सेवा नहीं कर सकता। सचाई से किसी काम में लगते हैं, परन्तु पहले विष मिलता है। जो विष को पीने में समर्थ है, वही कोई महान् कार्य कर सकता है, अन्यथा नहीं। अमृत के लिए मन्थन हो रहा था और विष उत्पन्न हो गया।

वह विष तीनों लोकों को जलाने लगा तब देवता, दैत्य, मनुष्य आदि सभी जीव भयभीत हो गये। महादेव से उनका भय देखा नहीं गया, क्योंकि महादेव का एक नाम '**भुवनभयभङ्गव्यसनी**' है। लोकों के भय को नाश करना ही उनकी आदत है। कुछ लोग महादेव को भाङ्ग का व्यसनी कहते हैं ऐसा नहीं है।

जब लोकों को भयभीत देखा तो महादेव सहन नहीं कर सके, अन्य सबकुछ सहन कर लेते हैं, पर भक्तों का भय नहीं। उनको देखकर महादेव कृपापरवश हो गए और पार्वतीजी की तरफ देखकर कहा, 'देखो, यह सब लोग मर रहे हैं, मैं विष पीने जा रहा हूँ, तुम विरोध नहीं करना।' माता पार्वती ने भी सहमति दे दी। महादेव ने विष को उठाकर पी लिया। उनके कण्ठ पर उस हलाहल विष से काला दाग पड़ गया।

इसी घटना को पुष्पदन्ताचार्यजी कहते हैं - हे त्रिनयन! (सूर्य, चन्द्रमा, अग्निरूपी नेत्रोंवाले महादेव) असमय में ब्रह्माण्ड के क्षय होने की सम्भावना से भयभीत हुए देवताओं और असुरों के ऊपर दया के वशवर्ती होकर क्षीरसागर के मन्थन के समय उत्पन्न हलाहल विष को पी लेनेवाले आपके कण्ठ में जो कालिमा हो गई है, वह अवश्य ही आपके कण्ठ की शोभा बढ़ानेवाली है क्योंकि उसका सम्बन्ध एक महान् कार्य से है। यह एक न्याय है कि सम्पूर्ण

संसार के भय को नाश करने के स्वभाववाले का जो विकार है, वह भी प्रशंसा के योग्य ही है। जैसे, किसी स्वतन्त्रता-सेनानी को गोली लगी हो तो वह चिह्न निन्दनीय नहीं है, अपितु प्रशंसनीय ही है।

****

महापुरुषों के विकार भी प्रशंसनीय हैं, ऐसा बताकर जितेन्द्रियों का अनादर करना अपने ही विनाश में हेतु बनता है, इसे आधार बनाकर गन्धर्वराज आगे स्तुति करते हैं :-

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः।।१५।।

अन्वयार्थ : ईश! = हे स्वामी (नाथ)! **यस्य =** जिस कामदेव के, **नित्यम् =** सर्वदा, **जयिनः विशिखाः =** विजयशील तीक्ष्ण बाण, **सदेवासुरनरे =** देवता, असुर, मनुष्यों के सहित, **जगति =** संसार में, **क्वचिदपि =** कहीं पर भी, **असिद्धार्थाः =** अपने कार्य को बिना साधे, **न एव निवर्तन्ते =** लौटते ही नहीं हैं, **सः स्मरः =** वही कामदेव, **इतरसुरसाधारणम् =** अन्य साधारण देवताओं के समान, **त्वाम् पश्यन् =** आपको देखता हुआ, **स्मर्तव्यात्मा =** स्मरण करने योग्य शरीरमात्र वाला, **अभूत् =** हो गया, **हि =** निश्चय ही, **वशिषु =** जितेन्द्रियों का, **परिभवः =** अनादर करना, **पथ्यः न =** उचित (हितकर) नहीं होता है।

शिवतोषिणी

एक समय की बात है - महादेव हिमालय पर्वत की एक गुफा में समाधि लगाकर बैठे थे। हिमालय (हिमालय पर्वत के अधिष्ठाता देवता) भगवान् महादेव के दर्शन करने नित्य जाया करते थे। भगवान् ने केवल हिमालय को ही दर्शन की अनुमति दे रखी थी, अन्य कोई नहीं जा सकता था। एक दिन हिमालय कन्या पार्वतीजी ने हठ किया कि मैं भी भगवान् के दर्शन करने चलूँगी। हिमालय के मना करने पर भी वह एक न सुनकर उनके साथ महादेव के दर्शन करने चली गई। पार्वती को देखकर महादेव क्रोधित हो गए और उन्होंने हिमालय को डाँटा तथा पार्वती को कहा, 'तुम समाधि में विघ्न डालनेवाली हो।' हिमालय भी बड़े दुःखी हुए।

पार्वती ने कहा, 'भगवन्! आप कहते हैं - **एकमेवाद्वितीयम् ब्रह्म (छा.उप.-६.२.१)** अर्थात् **सजातीय-विजातीय-स्वगत-भेदरहित एक ब्रह्म** को मैं मानता हूँ। इधर तो आप सभी प्रकार के भेद से रहित एक ब्रह्म को ही मानते हैं और उधर मुझे माया समझकर डरते हैं। यदि माया है ही नहीं तो उसका डर किस बात का है?' महादेव चुप हो गए। पार्वती ने कहा, 'देखिये भगवन्, आप भजन कीजिए, मैं आपकी सेवा करूँगी, आपके भजन में विघ्न नहीं करूँगी।' इस प्रकार पार्वती अपनी सखियों को साथ लेकर महादेव की सेवा में नित्य जाने लगी।

उधर तारकासुर नामक एक दैत्य देवताओं को बहुत कष्ट देने लगा। उसको कोई भी मारनेवाला नहीं था क्योंकि ब्रह्माजी ने उसको वरदान दिया था कि महादेव का पुत्र ही तुमको मार सकता है, अन्य कोई नहीं, इसलिए वह निश्चिन्त था क्योंकि सतीजी ने तो दक्ष के यज्ञ में अपना शरीर त्याग दिया था। अब महादेव के पुत्र कैसे उत्पन्न होगा? इस प्रकार हमको मारनेवाला कोई नहीं है। इस अहंकार से वह देवताओं को कष्ट देने लगा।

इधर देवताओं ने मन्त्रणा की कि महादेव का पुत्र कैसे उत्पन्न हो जिससे

वह इस असुर को मारे? उन्होंने पार्वती को महादेव की सेवा में देखकर सोचा कि यह अच्छा अवसर है। कामदेव को कहा, 'तुम महादेव के पास जाओ, उनके मन में क्षोभ उत्पन्न करो तो वह पार्वती से विवाह कर लेंगे। विवाह होगा तो पुत्र उत्पन्न हो जाएगा। महादेव का पुत्र उत्पन्न होता है तो हमारा कार्य सिद्ध हो जाएगा।' कामदेव को देवताओं द्वारा बार-बार प्रेरित करने पर वह तैयार हो गया क्योंकि उसको तो वरदान मिला था कि किसी पर भी तुम्हारा बाण व्यर्थ नहीं जाएगा, कार्य करेगा ही। कामदेव वहाँ पहुँचा जहाँ हिमालय में महादेव समाधिस्थ थे। उसने अपना कामबाण महादेव पर चला दिया। महादेव ने देखा कुछ हलचल हो रही है, इधर-उधर देखा तो कामदेव दिखाई दिया। उसको क्रोध से देखा और कामदेव भस्म हो गया।

इस पौराणिक कथानक को लेकर पुष्पदन्ताचार्यजी कहते हैं-हे सर्वेश्वर! **यस्य नित्यं जयिनः विशिखाः** यहाँ "**जयिनः**" पद को लेकर दो प्रकार का अर्थ हो सकता है। एक तो **यस्य नित्यं जयिनः कामस्य** यहाँ पर जयिनः पद षष्ठी एकवचन है। जो **कामस्य** पद का विशेषण है। अर्थात् जिस नित्य ही विजयशील कामदेव के बाण। दूसरा अर्थ **नित्यं जयिनः विशिखाः** यहाँ पर **जयिनः** पद प्रथमा-बहुवचन है जो **बिशिखाः** पद का विशेषण है। अर्थात् जो नित्य ही विजयशील बाण। नित्य ही विजयशील कामदेव के तीक्ष्ण बाण ऐसे हैं कि उनके सामने देव, असुर, मनुष्य कोई भी हो वे अपना कार्य किए बिना कभी भी खाली नहीं लौटते हैं।

परन्तु हे महादेव! आपके सामर्थ्य को न जानते हुए आपको अन्य साधारण देवता के समान समझकर वश में करने के लिए उसने अपना बाण छोड़ दिया और इस अपराध के कारण वह स्मृतिमात्र का विषय (अनङ्ग) होकर रह गया। अर्थात् भस्म हो गया। यह निश्चित ही है कि योगी (जितेन्द्रिय) महापुरुषों का अनादर हितकर नहीं होता। आप तो महायोगी हैं आपका अनादर करने से कामदेव भस्म हो गया तो कोई आश्चर्य नहीं है।

****

संसार की रक्षा के लिए कल्याणमूर्ति परमेश्वर की क्रीड़ा भी कभी-कभी प्रतिकूल हो जाती है। इस भाव को लेकर पुष्पदन्ताचार्यजी आगे स्तुति कर रहे हैं :-

महीं पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम्।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता।।१६।।

अन्वयार्थ : **ईश!** = हे स्वामी (नाथ)! **पादाघाताद्** = आपके पैरों की चोट से, **मही** = पृथ्वी, **सहसा** = अचानक, **संशयपदम्** = सन्देह की स्थिति को (ऊपर-नीचे को), **व्रजति** = प्राप्त हो जाती है, **विष्णोः पदम्** = विष्णु का अन्तरिक्ष लोक भी, **भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम्** = घूमती हुई परिघाकार (मुद्गरों जैसी) भुजाओं के प्रहार से संकटापन्न नक्षत्रगणोंवाला हो जाता है, **अनिभृतजटाताडिततटा** = खुली हुई जटाओं के प्रहार से ताड़ित किनारेवाला, **द्यौः** = स्वर्ग भी, **मुहुः** = बारम्बार, **दौस्थ्यम्** = दुरवस्था को, **याति** = प्राप्त हो जाता है, **जगद्रक्षायै** = जगत् की रक्षा के लिए, **त्वं नटसि** = आप नृत्य करते हैं। **ननु** = अहो! (आश्चर्य है), **विभुता** = वैभव भी (कभी-कभी), **वामा-एव** = प्रतिकूल ही हो जाता है।

शिवतोषिणी

कालबल नाम का एक असुर था। उसके मन में आसुरी वृत्ति तो थी ही,

उसका संकल्प हुआ कि मेरा शरीर इतना बड़ा हो जाए जिससे मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को एक साथ ग्रास कर लूँ। ऐसा निश्चय करके वह कठोर तपस्या में लग गया। ब्रह्माजी आए और बोले, 'मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। जो वर माँगना है, माँग लो।' कालबल ने कहा, 'पितामह! मेरा शरीर इतना विशाल कर दीजिए कि मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को ग्रास कर लूँ।' ब्रह्माजी के मना करने पर भी उसने बहुत हठ किया, तो ब्रह्माजी ने कहा, 'ठीक है, तुम्हारा शरीर सूर्यास्त के समय बढ़ेगा और आकाश में तारे दिखाई देने पर घटना शुरू हो जाएगा। उतने समय में तू ब्रह्माण्ड को ग्रास कर सकता है।'

वर पाकर सूर्यास्त के समय जब उसका शरीर बढ़ने लगा, तो महादेव ने विचार किया - 'यह दैत्य तो ब्रह्माण्ड को ही ग्रास कर लेगा।' महादेव तो '**भुवनभयभङ्गव्यसनी**' (लोकों के भय को नाश करने के स्वभाववाले) हैं। उनसे ऐसा कब सहन होता। महादेव ने भी उस दैत्य के आकार के समान अपना शरीर बना लिया और उसके सामने नृत्य करने लगे। दैत्य उनका नृत्य देखकर मोहित हो गया। वह संसार को ग्रास करना भूल ही गया। उस समय इतने बड़े आकारवाले महादेव ने संसार की दैत्य से रक्षा तो कर ली, पर नृत्य के दौरान हिलते हुए उनके अंगों से ब्रह्माण्ड की क्या दशा होती है। इस घटना का वर्णन करते हुए पुष्पदन्ताचार्यजी स्तुति करते हैं।

हे **भुवनभयभङ्गव्यसनिन् शंकर**! आप तो जगत् की रक्षा के लिए नृत्य करते हैं, परन्तु जब आप नृत्य करते हैं, तब आपकेचरणों के आघात से पृथ्वी अचानक ऐसे संशय को प्राप्त होती है जैसे कहीं प्रलयकाल तो नहीं हुआ है और आपके परिघाकार (मुद्गर के समान) भुजाओं की चपेट में आकर अन्तरिक्ष (विष्णुपद) में नक्षत्रसमूह भी परस्पर टकराने लगते हैं और रुग्णता (भय) को प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार अन्तरिक्ष में भी संशय हो जाता है कि कहीं प्रलयकाल तो नहीं आया है। अब तीसरे लोक की क्या दशा है, वह भी बताते हैं। जब आपकी खुली हुई जटाएँ द्युलोक (स्वर्गलोक) से टकराती हैं, तो जटाओं से ताड़ित किनारेवाला द्युलोक भी बार-बार दुरवस्था को प्राप्त हो

जाता है। बड़ी ही कठिनाई से वह अपने स्थान पर स्थित रह पाता है। आश्चर्य यह है कि बड़े ऐश्वर्य का स्वभाव टेढ़ा ही रहता है। आप तो जगत् की रक्षा के लिए नृत्य करते हैं, परन्तु जगत् भय को प्राप्त हो जाता है।

यहाँ भी देखिये, जब कोई प्रधानमन्त्री किसी क्षेत्र का दौरा करने जाता है, तो उसकी सुरक्षा को लेकर वहाँ की प्रजा में हलचल हो जाती है। रास्ते आदि बन्द कर दिये जाते हैं। इस प्रकार कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। वस्तुतः प्रधानमन्त्री तो वहाँ उस क्षेत्र के विकास आदि के कार्य को देखने जाता है। क्षेत्र के भले के लिए ही जाता है। इसलिए कहा है कि ऐश्वर्य का स्वभाव ही टेढ़ा है।

****

अब गंगा के धारण और उद्धार का वर्णन करते हुए पुष्पदन्ताचार्यजी महादेव की स्तुति करते हैं।

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः।।१७।।

अन्वयार्थ : **वियद्व्यापी** = सम्पूर्ण आकाश में व्याप्त, **तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः** = तारागणों के प्रतिबिम्ब द्वारा बढ़ी हुई कान्ति (शोभा) वाला, **यः वाराम् प्रवाहः** = जो जल (आकाशगंगा) का प्रवाह, **ते** = आपके, **शिरसि** = सिरपर, **पृषतलघुदृष्टः** = बिन्दु से

भी छोटा देखा गया, **तेन** = उसी जलप्रवाह से, **जलधिवलयम्** = समुद्र से घिरा हुआ, **द्वीपाकारम्** = द्वीप के आकारवाला, **जगत् कृतम्** = जगत् कर दिया गया, **अनेन-एव** = इसी से ही, **तव वपुः** = आपका शरीर, **दिव्यम्** = दिव्य (और) **धृतमहिम** = अलौकिक महिमा धारण करनेवाला है, **इति उन्नेयम्** = ऐसा अनुमान कर लेना चाहिए।

शिवतोषिणी

पहले गंगाजी स्वर्गलोक (आकाश) में थी। भगीरथ ने अपने पूर्वजों के उद्धार के लिए गंगा को स्वर्गलोक से पृथ्वी पर लाने के निमित्त बड़ा कठोर तप किया। भगीरथ की तपस्या के प्रभाव से गंगा प्रसन्न हो गई और पृथ्वी पर आने को तैयार हो गयी। गंगा ने कहा, 'मैं पृथ्वीलोक पर आऊँगी तो पृथ्वी मेरे प्रवाह को सहन नहीं कर पाएगी और मैं पृथ्वी का भेदन करते हुए पाताल में पहुँच जाऊँगी।' तब भगीरथ ने गंगा को धारण करने के लिए भगवान् शिव की आराधना की। भगवान् शिव उसकी आराधना से प्रसन्न होकर गंगा को धारण करने के लिए तैयार हो गए। वे अपनी जटाओं को खोलकर खड़े हो गए। गंगाजी अपने पूर्ण प्रवाह के साथ स्वर्गलोक से चलीं और महादेव की जटा में गायब हो गयी (समा गयी)। इस भाव को लेकर पुष्पदन्ताचार्यजी आगे स्तुति करते हैं।

कहते हैं - महादेव! सम्पूर्ण आकाश में व्याप्त तारागणों की चमक द्वारा वर्धित फेन की शोभावाला गंगा का जलप्रवाह आपके सिर पर (जटाओं में) एक बूँद के समान गायब हो गया। फिर जब आपने उस गंगा-प्रवाह को अपनी जटा से मुक्त किया तो अगस्त्य ऋषि के द्वारा शोषण किया गया समुद्र भी उसी जल-प्रवाह से भर गया और पृथ्वी द्वीप के आकार की हो गई। इतना विशाल जल-प्रवाह आपकी जटा में बूँद के समान समा जाए तो आपका शरीर कितना विशाल होगा! इसीसे आपकी दिव्य और अलौकिक महिमा का अनुमान करना योग्य ही है।

त्रिपुर-दहन के प्रसंग में 'ईश्वर सर्वसमर्थ होता है, उसके ऊपर किसी प्रकार की निषेधाज्ञा नहीं होती' इसको दर्शाते हुए पुष्पदन्ताचार्यजी स्तुति करते हैं :-

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः।।१८।।

अन्वयार्थ : **क्षोणी रथः** = पृथ्वी को रथ, **शतधृतिः यन्ता** = ब्रह्मा को सारथि, **अगेन्द्रः धनुः** = सुमेरु को धनुष, **चन्द्रार्कौ रथाङ्गे** = सूर्य-चन्द्रमा को रथ के पहिये, **अथो** = और, **रथचरणपाणिः** = विष्णु को, **शरः** = बाण बनाया, **इति** = इस प्रकार, **त्रिपुरतृणम्** = त्रिपुर नामक तृण को, **दिधक्षोः ते** = जलाने की इच्छावाले आपकी, **अयं कः** = यह क्या, **आडम्बरविधिः** = आडम्बर रचना थी? अर्थात् इसकी कोई आवश्यकता ही नहीं थी, **खलु** = निश्चय ही, **विधेयैः** = अपने अधीनों के साथ, **क्रीडन्त्यः** = खेलती हुईं, **प्रभुधियः** = स्वामी (परमेश्वर) की बुद्धिवृत्तियाँ, **परतन्त्राः न** = पराधीन नहीं होती हैं।

शिवतोषिणी

त्रिपुरासुर नाम के दैत्य से जब सभी देवता आतंकित हो गये, तब उन्होंने महादेव के समक्ष जाकर स्तुति की और उनको अपनी आपदा बताई। महादेव तो भुवनभयभङ्गव्यसनी हैं, अतः देवताओं का कष्ट हरण करने के लिए

वे उस दैत्य को मारने के लिए उद्यत हुए। महादेव ने सभी देवताओं का सहयोग किसी-न-किसी प्रकार से लिया और उस दैत्य का संहार किया।

इसी आख्यायिका को लेकर पुष्पदन्ताचार्यजी कहते हैं, 'हे परमेश्वर, आपने पृथ्वी को रथ बनाया, ब्रह्मा को सारथि, सुमेरु पर्वत को धनुषा और रथचरणपाणि को आपने बाण बनाया। रथचरण का अर्थ है चक्र, और रथचरणपाणि का अर्थ हुआ चक्रपाणि अर्थात् भगवान् विष्णु। अन्यान्य देवताओं में से किसी को रस्सी, किसी को ध्वजा आदि बनाया। इस प्रकार का वर्णन शिवपुराण में आया है। यहाँ प्रश्न करते हैं कि त्रिपुर नामक इस तृण को जलाने की इच्छावाले आपने यह सब आडम्बर क्यों किया? इसका अर्थ यह नहीं है कि आप पराधीन हैं। निश्चय ही अपने अधीनों के साथ क्रीडा करते हुए स्वामी की बुद्धिवृत्तियाँ पराधीन नहीं होतीं अर्थात् स्वतन्त्र ही रहती हैं। फिर वे ऐसा खेल क्यों करते हैं? केवल दूसरों को सम्मान देने के लिए। वस्तुतः महापुरुषों का यह स्वभाव ही होता है - दूसरों को सम्मान देना। कार्य उनके संकल्प से होता है और श्रेय वे दूसरों को देते हैं।

भागवतपुराण वर्णन आता है - भगवान् श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उठाया तो अन्य ग्वालबालों को भी पर्वत के नीचे लकड़ियाँ लगाने को कहा था। पर्वत बालकों की लकड़ियाँ लगाने से नहीं उठा, वह तो भगवान् के संकल्प से उठा था। परन्तु भगवान् ने उनको श्रेय देने के लिए ऐसी लीला की। महापुरुषों को यश लेने की स्वयं की इच्छा नहीं होती, बल्कि दूसरों को यश बाँटने का उनका स्वभाव होता है।

****

भगवान् विष्णु की भगवान् शिव के प्रति भक्ति और उस भक्ति का फल दर्शाते हुए गन्धर्वराज पुनः स्तुति करते हैं :-

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम्।।१९।।

अन्वयार्थ : त्रिपुरहर! = हे त्रिपुरविदारक! **हरिः** = भगवान् विष्णु ने, **ते पदयोः** = आपके चरणों में, **साहस्रम्** = पूर्ण एक हजार, **कमलबलिम्** = कमलपुष्पों का उपहार, **आधाय** = निवेदन कर (चढ़ाकर), **तस्मिन्** = उन हजार कमलों में से, **एकोने** = एक पुष्प के कम हो जाने पर, **यद् निजम्** = जो स्वयं (विष्णु ने) अपने, **नेत्रकमलम्** = नेत्ररूपी कमल को, **उदहरत्** = निकालकर चढ़ा दिया था, **असौ** = वही, **भक्त्युद्रेकः** = भक्ति का आवेग (उत्कृष्टता), **चक्रवपुषा** = सुदर्शन चक्र के रूप में, **परिणतिम्** = परिणाम को, **गतः** = प्राप्त हो गया (और), **त्रयाणाम्** = तीनों, **जगताम्** = लोकों की, **रक्षायै** = रक्षा के लिए, **जागर्ति** = जाग्रत है अर्थात् सावधान है।

शिवतोषिणी

पुराण-प्रसिद्ध कथा है कि भगवान् विष्णु जगत् की रक्षा के निमित्त तप करने के लिए काशी गये। वहाँ उन्होंने एक कुण्ड का निर्माण किया और उसके किनारे एक शिवलिङ्ग की स्थापना की। वह कुण्ड और शिवलिङ्ग आज भी मणिकर्णिका-कुण्ड और मणिकर्णिकेश्वर महादेव के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्होंने

व्रत धारण किया कि एक वर्ष तक प्रतिदिन शिवसहस्रनाम से एक हजार कमलपुष्प महादेव को चढ़ाऊँगा। इस प्रकार भगवान् महादेव की भक्तिपूर्वक आराधना भगवान् विष्णु करते रहे।

वर्ष के अन्तिम दिन परीक्षार्थ की गई महादेव की लीला से भगवान् विष्णु द्वारा पूजार्थ रखे गए पूर्ण एक हजार कमलों में से एक कमल कम हो गया। अनुष्ठान के अन्तिम समय में विघ्न आ जाने से भगवान् विष्णु धर्मसंकट में पड़ गए। उनके अन्दर बहुत भाव उत्पन्न हो गया और उन्होंने सोचा कि लोग मुझे कमलनयन कहते हैं, क्यों न मैं अपना एक नेत्र निकालकर भगवान् को चढ़ा दूँ, ऐसा विचार करके भावोद्रेक में अपना नेत्र निकालकर महादेव को अर्पित कर दिया। इस प्रकार कम हुए एक कमल की पूर्ति कर दी।

उनकी जो महादेव के प्रति महाभक्ति (भावोद्रेक) थी, वही सुदर्शन-चक्र के रूप में उनके समक्ष प्रकट हो गयी और उसी सुदर्शन-चक्र को लेकर भगवान् विष्णु लोकों की रक्षा करने के लिए आज भी सावधान रहते हैं। यहाँ पर भावोद्रेक को ही कर्ता बनाया है। यहाँ एक बात स्पष्ट होती है कि औरों की क्या बात करें साक्षात् भगवान् विष्णु के भी अनुग्राहक स्वयं महादेव ही हैं। उन्होंने ही प्रसन्न होकर जगत् की रक्षा के लिए भगवान् विष्णु को सुदर्शन-चक्र दिया था।

****

भगवान् शिव की आराधना मात्र से ही सम्पूर्ण ऐश्वर्यों की प्राप्ति का वर्णन करके, अब 'ईश्वर की अपेक्षा के बिना ही कर्म से उत्पन्न अपूर्व सभी फलों का विधान करता है', मीमांसकों के इस सिद्धान्त का खण्डन करते हुए गन्धर्वराज स्तवन करते हैं :-

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां

क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते।

अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः।।२०।।

अन्वयार्थ : **क्रतुमताम्** = यज्ञ इत्यादि सत्कर्म करनेवालों के, **क्रतौ सुप्ते** = क्रियारूप यज्ञ इत्यादि के समाप्त हो जाने पर, (कालान्तर में होनेवाले) **फलयोगे** = फलों के साथ सम्बन्ध कराने में, **त्वम्** = आप, **जाग्रत् असि** = सदा जाग्रत (सावधान) रहते हैं, **प्रध्वस्तम्** = (क्योंकि) नष्ट हुआ, **कर्म** = कर्म (यज्ञ इत्यादि जड़कर्म), **पुरुषाराधनम्** = चेतनस्वरूप फलदाता ईश्वर की आराधना के, **ऋते** = बिना, **क्व फलति** = कहाँ फलीभूत होता है? अर्थात् कहीं भी नहीं होता है। **अतः** = इसी कारण से, **क्रतुषु** = यज्ञादिक कर्मों में, **फलदानप्रतिभुवम्** = फल देने के लिए जिम्मेदार (उत्तरदायी)रूप से, **त्वाम्** = आपको, **सम्प्रेक्ष्य** = अच्छी रीति से देख (जान) कर, **श्रुतौ** = वेदवचनों में, **श्रद्धां बद्ध्वा** = पूर्ण श्रद्धा रखकर, **कर्मसु** = विहित कर्मों के करने में, **जनः** = लोग, **दृढपरिकरः** = स्थिर-उद्यम होते हैं अर्थात् कर्म करने में दृढ़ता के साथ कटिबद्ध रहते हैं।

शिवतोषिणी

पुष्पदन्तजी कहते हैं, हे सर्वेश्वर! जगत् में लोग यज्ञ-दान इत्यादि शुभकर्म करते हैं। परन्तु यज्ञ इत्यादि की क्रिया तो यहीं पर समाप्त हो जाती है और उसका फल स्वर्ग इत्यादि का सुख-भोग कालान्तर में होता है। उस कर्म का फल के साथ सम्बन्ध कैसे सम्भव होगा? इस सम्बन्ध को कराने के लिए

आप सदा सचेत (सावधान) रहते हैं क्योंकि नष्ट हुए केवल जड़ कर्म में फल देने की सामर्थ्य नहीं होती। मीमांसकों का यह सिद्धान्त कि कर्मजन्य अपूर्व फल देने में समर्थ है, ईश्वर की बीच में कोई आवश्यकता नहीं, मान्य नहीं है। व्यवहार में भी देखा जाता है कि कोई मजदूर दिनभर खेत में कार्य करता है तो कोई व्यक्ति साक्षी (सम्बन्धित) होकर देखता है, उसीके अनुसार उसे मजदूरी देता है। केवल मजदूर द्वारा किया गया कर्म फल नहीं देता है।

जड़ में ज्ञान उत्पन्न हो नहीं सकता है। जड़ कैसे जानेगा कि यह कर्म इसका है? इसलिए चेतनपुरुष परमात्मा (शिव) की आराधना के बिना किया गया जड़कर्म फलदायक नहीं हो सकता। अतः लोग यज्ञ-दान इत्यादि शुभ कर्मों में फल देनेवाले समर्थ जिम्मेदार (उत्तरदायी) आपको देखकर विश्वास करके शास्त्रसम्मत कर्म करने में पूर्ण श्रद्धा के साथ कमर कसकर लगे रहते हैं कि कर्म का फल तो ईश्वर देंगे, हमें तो कर्म करना है। जैसे जगत् में भी देखते हैं कि एक व्यक्ति ऋण लेनेवाला होता है, उसे अधमर्ण कहते हैं। दूसरा ऋण देनेवाला होता है, उसे उत्तमर्ण कहते हैं। एक तीसरा इन दोनों के बीच में जमानती होता है, जिसे संस्कृत में प्रतिभू कहते हैं। उत्तमर्ण प्रतिभू के उत्तरदायित्व पर अधमर्ण को ऋण देता है। वह जानता है कि अधमर्ण नहीं देगा तो हमें प्रतिभू देगा ही। इसी प्रकार आपको (महादेव को) प्रतिभू समझकर लोग सत्कर्म करते हैं।

****

अश्रद्धा से किए गए यज्ञादि दुष्कर कर्म भी विपरीत फल देनेवाले होते हैं। इस विषय को आधार बनाकर पुष्पदन्ताचार्यजी आगे स्तुति करते हैं :-

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः॥२१॥

अन्वयार्थ : **शरणद! = हे!** अशरणों को शरण देनेवाले परमेश्वर! **क्रियादक्षः** = यज्ञ इत्यादि सभी क्रियाओं के अनुष्ठान करने में निपुण, **तनुभृताम्** = देहधारियों का, **अधीशः** = अधिनायक, **दक्षः** = दक्ष प्रजापति स्वयं, **क्रतुपतिः** = यज्ञ का यजमान, **ऋषीणाम्** = त्रिकालज्ञ भृगु इत्यादि ऋषिगण, **आर्त्विज्यम्** = याग करानेवाले पुरोहित, **सुरगणाः** = देवगण, **सदस्याः** = सभासद थे, (ऐसा बड़ा यज्ञ होने पर भी) **क्रतुफलविधानव्यसनिनः** = यज्ञ इत्यादि कर्मों के फल देने के अभ्यासी (आदतवाले), **त्वत्तः** = आपके द्वारा ही, **क्रतुभ्रंशः** = यज्ञ का विध्वंस हो गया, **ध्रुवम्** = निश्चय ही, **श्रद्धाविधुरम्** = श्रद्धा के बिना किए गए, **मखाः** = यज्ञ इत्यादि कर्म, **कर्तुः** = कर्ता के, **अभिचाराय हि** = विपरीत फलदायक, अर्थात् विनाश के लिए ही होते हैं।

शिवतोषिणी

आज के युग में यज्ञ करना बहुत कठिन कार्य है। जपयज्ञ, तपयज्ञ ये सब करना चाहिए, परन्तु बाह्य यज्ञ करना असम्भव है। मुख्य बात तो यह है कि जो याज्ञिक सामग्री होनी चाहिए, गोघृत इत्यादि उनका शुद्ध मिलना ही कठिन है। शास्त्र के अनुसार यज्ञमण्डप बनना चाहिए, उसमें एक सूत भी इधर-उधर नहीं चलेगा। बहुत प्रकार की मृत्तिका चाहिए। उसको भी इकट्ठा करना कठिन है। यज्ञ करवानेवाले ब्राह्मण अग्निहोत्री होने चाहिए, आजकल तो ऐसे ब्राह्मण मिलना असम्भव-सा हो गया है। जितने दिन यज्ञ चलता है, कोई भी अतिथि आए, आप उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। यदि भोजन-आवास आदि में उसकी उपेक्षा की तो यज्ञ में दोष आ जाएगा। यज्ञकाल में यजमान को कई प्रकार के व्रतों का पालन करना पड़ता है, जो बहुत ही दुष्कर है। यजमान में

कोई दोष आ जाए तो उस यज्ञ का अदृष्ट विपरीत हो जाता है, आजकल ऐसा प्रायः देखा जाता है। मनुस्मृति में मनुजी कहते हैं यज्ञ से बढ़कर कोई मित्र भी नहीं है और शत्रु भी नहीं है। यज्ञ इत्यादि कर्मकाण्ड में सबकुछ ठीक हो, परन्तु यजमान में श्रद्धा का अभाव हो, तो उस कर्म का फल नहीं मिलता, बल्कि विपरीत फल हो जाता है।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।।(गीता-१७.२८)

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि अश्रद्धा से किये गए हवन, दान,तप, इत्यादि कर्मों को असत् इस प्रकार कहना चाहिए क्योंकि वे न तो इस लोक में और न ही परलोक में फल देनेवाले होते हैं। इसी प्रसंग को लेकर पुष्पदन्ताचार्यजी कहते हैं :-

हे अनाश्रितों को भी शरण देनेवाले परमेश्वर! प्रजापति दक्ष ने एक यज्ञ का आयोजन किया था। वह यज्ञ विधिपूर्वक हो रहा था क्योंकि यज्ञ इत्यादि सत्कर्म करने में अत्यन्त निपुण तीनों भुवनों के स्वामी (प्रजापति) दक्ष स्वयं यजमान थे। अतः वहाँ धन इत्यादि की कमी विघ्न हो नहीं सकती थी। भृगु इत्यादि त्रिकालज्ञ महर्षि उस यज्ञ में ऋत्विक् (पुरोहित) थे, जिससे क्रियादोष या मन्त्रदोष होने की कोई सम्भावना नहीं थी। सभी देवता लोग वहाँ पर सभासद थे, प्रबन्धन कर रहे थे। इस प्रकार व्यवस्था आदि में भी कोई कमी रहे, ऐसी सम्भावना भी नहीं थी। फिर भी यज्ञादि शुभकर्मों का फल देने के व्यसन (स्वभाव) वाले आपके द्वारा ही यज्ञ का विध्वंस हो गया।

इसमें कारण यही है कि सब कुछ ठीक होने पर भी यदि यज्ञकर्ता यजमान की आप ईश्वर के प्रति श्रद्धा न हो तो निश्चय ही वह यज्ञ विपरीत फल देनेवाला हो जाता है। ऐसा अश्रद्धा-दोष ही दक्ष में आ गया था जो यज्ञ के विनाश का कारण बना। इसकी कथा शिवपुराण में तथा स्कन्दपुराण के काशीखण्ड के ८७, ८८, ८९ अध्यायों में विशदरूप से वर्णित है।

अब कामाविष्ट ब्रह्मा के प्रति भगवान् भूतनाथ का निग्रह दर्शाते हुए गन्धर्वराज पुनः स्तुति करते हैं :-

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः॥२२॥

अन्वयार्थ : **नाथ**! = हे सर्वनियामक ईश्वर! **रोहिद्भूतां** = मृगीशरीर धारित, **स्वाम्** = अपनी, **दुहितरम्** = कन्या के प्रति, **ऋष्यस्य वपुषा** = मृगशरीर द्वारा, **प्रसभम्** = बलपूर्वक, **रिरमयिषुम्** = काम की इच्छावाले, **गतम्** = गये हुए, **सपत्राकृतम्** = अपने को बाण से बिंधा हुआ समझने की स्थिति को प्राप्त हो, **दिवम्** = स्वर्ग में, **यातम् अपि** = जाने पर भी, **त्रसन्तम्** = भयभीत हुए, **अभिकम्** = कामुक, **अमुम् प्रजानाथम्** = इन ब्रह्माजी को, **मृगव्याधरभसः** = कुशल शिकारी की भाँति अत्यन्त शीघ्रता से, **धनुष्पाणेः** = धनुर्धर, **ते** = आपका (बाण), **अद्य अपि** = आज भी, **न त्यजति** = नहीं छोड़ता है, अर्थात् आज भी पीछा कर रहा है।

शिवतोषिणी

सृष्टि का आदिकाल था। ब्रह्माजी विचार कर रहे थे कि सृष्टि कैसे बढ़े? उन्होंने कुछ मानससृष्टि की, परन्तु जो समस्या थी सृष्टि आगे न बढ़ने की, उसका कोई हल नहीं निकला। उन्होंने सोचा कि जीव में जब तक कामना उत्पन्न

नहीं होगी, तब तक सृष्टि आगे नहीं बढ़ सकती है। कोई ऐसा तत्त्व उत्पन्न किया जाए जो सबके चित्त में प्रवेश करके क्षोभ (काम) उत्पन्न करे। फिर वह काम सृष्टि बढ़ा देगा।

ऐसा विचारकर ब्रह्माजी ने कामदेव को उत्पन्न किया। कामदेव ने अपना दिव्य शरीर देखकर कहा, 'पितामह! आपने हमको क्यों उत्पन्न किया है?' ब्रह्माजी ने कहा, 'सब जीवों के मन में सृष्टि बढ़ाने के निमित्त क्षोभ उत्पन्न करो।' तब कामदेव ने कहा, 'हमको इस कार्य के लिए आशीर्वाद दीजिए।' ब्रह्माजी ने कहा, 'ठीक है, जाओ, किसी भी देव-असुर और मनुष्य इत्यादि पर तुम्हारा पराक्रम अमोघ रूप से कार्य करेगा।'

वरदान पाकर कामदेव बोला, 'पहले आप पर ही परीक्षण कर लिया जाए।' तब कामदेव ने ब्रह्माजी के ऊपर ही अपने पञ्चबाण चला दिए। उनका चित्त अभिभूत (कामाक्रान्त) हो गया। समीप में ब्रह्माजी की मानसपुत्री संध्या बैठी थी। उनकी काममय दृष्टि संध्या पर पड़ी। समीप में बैठे हुए उनके मानसपुत्र ऋषियों ने समझाया, 'पितामह! आप इसे ऐसी दृष्टि से न देखिये, यह आपकी पुत्री है।' परन्तु कामाविष्ट, क्रोधाविष्ट और मोहाविष्ट व्यक्ति को कोई भी बात समझ में नहीं आती है। संध्या को बड़ी लज्जा आई और वह मृगी का रूप धारण करके भाग गई। ब्रह्माजी ने भी मृगशरीर धारणकर उसका पीछा किया।

महादेव ने सोचा - देखो, हमने सृष्टि के आदि में इस ब्रह्मा को उत्पन्न किया, आगे सृष्टि बढ़ाने के लिए परन्तु इसने तो सम्पूर्ण शास्त्रों के आदर्शों को ही भ्रष्ट कर दिया। ऐसा विचार करके महादेव ने एक बाण ब्रह्मा पर छोड़ दिया। स्कन्दपुराण में तो कथा यही है कि ब्रह्मा का एक सिर काट दिया गया। तब ब्रह्माजी ने महादेव की स्तुति की।

परन्तु यहाँ पुष्पदन्ताचार्य कहते हैं, 'हे सबकी कामना को पूर्ण करनेवाले औघड़दानी! मृगीशरीरधारित अपनी कन्या के प्रति मृगशरीर धारण करके बलात् उसके साथ भोग (रति) की इच्छा से गये हुए, पत्रसहित बाण शरीर में घुस जाए इस प्रकार की स्थिति को प्राप्त हो शिवजी के बाण को

देखकर ब्रह्मा भागे तो उनको ऐसा लगता था कि यह बाण मेरा अभी छेदन करेगा।

स्वर्ग (अन्तरिक्ष में मृगशिरा नक्षत्र के रूप में) जाने पर भी उस भयभीत, मर्यादा भंग करनेवाले, कामुक प्रजानाथ ब्रह्मा को, **धनुष्पाणेः ते मृगव्याधरभसः अद्यापि न त्यजति** यहाँ पर '**त्यजति**' क्रिया का कर्ता '**मृगव्याधरभसः**' को बनाया है। '**धनुष्पाणेः ते**' से कर्ता का सम्बन्ध है। जैसे कुशल शिकारी मृग के पीछे चलता है, उसके समान अतिशीघ्रता से चलनेवाला आप धनुर्धारी का बाण आज भी उनका पीछा नहीं छोड़ता है, अर्थात् आज भी पीछा कर रहा है। अन्तरिक्ष में रोहिणी-नक्षत्र के रूप में मृगीरूपधारी संध्या और उसके पीछे मृगशिरा-नक्षत्र के रूप में मृगरूपधारी ब्रह्माजी का पीछा करता हुआ महादेव का बाण आर्द्रा-नक्षत्र के रूप में आज भी देखा जाता है।

****

पूर्वोक्त दो श्लोकों में महादेव को दुष्टमतियों के दण्डदाता के रूप में बताकर अब आगे परम जितेन्द्रिय भगवान् शिव स्वयं को पार्वती पर कृपावश स्त्रैण-सा (स्त्रीलम्पट) दिखा रहे हैं। इस भाव को दर्शाते हुए अगले श्लोक में **वर्णन करते हैं :-**

स्वलावण्याशंसाधृतधनुषमह्नाय तृणवत्
पुरःप्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः।।२३।।

अन्वयार्थ : **पुरमथन!** = हे त्रिपुरान्तक! **यमनिरत!** = हे यम-नियम परायण भगवन्! **स्वलावण्य-आशंसा** = अपने ही सौन्दर्य की आशा पर या पार्वती के सौन्दर्य से ही शिवजी को वश में करेंगे इस आशा से, **धृतधनुषम्** = धनुष धारण करनेवाले, **पुष्पायुधम्** = कामदेव को, **अह्नाय** = शीघ्र ही, **तृणवत्** = तिनके के समान, **पुरः** = सामने, **प्लुष्टम्** = दग्ध हुआ, **दृष्ट्वा** = देखकर, **अपि** = भी, **यदि** = यदि, **देवी** = पार्वती, **देहार्धघटनात्** = अर्धाङ्गिनी बनने (शिव के वामार्ध में स्वयं को स्थान मिलने) से, **त्वाम्** = आपको, **स्त्रैणम्** = स्त्रीवश (स्त्री-लम्पट), **अवैति** = समझती हैं तो, **वरद!** = हे वरदायक! **अद्धा** = सचमुच ही, **बत** = अहो (खेदयुक्त), **मुग्धाः युवतयः** = स्त्रियाँ भोली-भाली (नासमझ) होती हैं।

शिवतोषिणी

सती के देहत्याग के उपरान्त उनके वियोग में महादेवजी हिमालय में जाकर समाधिस्थ हो गये। पार्वती उनकी सेवा में थी। पार्वती का सान्निध्य प्राप्त करके कामदेव ने महादेव पर बाण चलाए, परन्तु महादेव की क्रोधाग्नि से वह भस्म हो गया। यहाँ तक की कथा श्लोक संख्या १५ में हो चुकी है। कामदेव के भस्म होने पर माँ पार्वती को अत्यन्त दुःख हुआ, वह रुदन करने लगीं। उस समय उन्हें नारदजी मिल गए और उन्होंने तपस्या करके महादेव को प्राप्त करने के लिए पार्वती को प्रेरित किया। पार्वती ने कठोर तपस्या करके महादेव को प्रसन्न कर लिया। पार्वती की परीक्षा के लिए महादेव ब्राह्मण बनकर आए और शिवजी की निन्दा करने लगे। शिवजी की निन्दा सुनकर पार्वतीजी को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने सखियों से कहा, 'इस ब्राह्मण को मेरे सामने से दूर हटाओ।

मैंने इसके मुख से महादेव की निन्दा सुन ली है। अब मैं चिता जलाकर भस्म हो जाऊँगी।'

इस प्रकार निश्चय करके पार्वतीजी चिता बनाकर जलने को तैयार हो गयीं। उसी समय भगवान् महादेव ब्राह्मण वेश छोड़कर प्रकट हो गए। महादेव ने कहा, 'हम आपपर प्रसन्न हो गए हैं। हमने आपको स्वीकार कर लिया।' पार्वतीजी ने कहा, 'ऐसा नहीं चलेगा। आप हमारे पिताजी के समक्ष जाकर हमको माँग लीजिए और विधिपूर्वक हमारे साथ विवाह कीजिए।' महादेव ने कहा, 'ये सब तो हमसे नहीं होगा।' अन्त में पार्वती ने हठ किया, तो महादेव मान गए। पार्वती अत्यन्त प्रसन्न होकर घर चली गई। उनके घर लौटने पर हिमालय ने बड़े उत्सव का आयोजन किया। एक दिन उत्सव के समय हिमालय गंगाजी में स्नान करने गए। पीछे से महादेवजी एक नट का वेश बनाकर डमरू बजाते हुए नृत्य करते हुए उत्सव में पहुँचे। सब लोग इकट्ठे होकर उनको देखने लगे। पार्वती की माता मैना ने प्रसन्न होकर नट को कुछ माँगने के लिए कहा। नट ने कहा, 'आपकी कन्या पार्वती ही दे दीजिए।' मैना बहुत क्रोधित हुई और कहा, 'इस धृष्ट को पकड़ो।' जो भी पकड़ने को समीप जाता, वह जलने लगता था।

तब तक हिमालय भी आ गए। महादेव ने अपना वह स्वरूप उनके समक्ष प्रकट कर दिया, जिसकी ब्रह्मा, विष्णु इत्यादि देवता भी स्तुति कर रहे थे। यह सब देखकर हिमालय भयभीत होते हुए स्तुति करने लगे। पार्वती समझ गयी कि महादेव ही यह लीला कर रहे हैं। इस प्रकार हिमालय ने महादेव के साथ पार्वती का विवाह कर दिया। महादेव पार्वती पर इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने पार्वती को अपने वामाङ्ग में स्थान दे दिया। इसी घटना को लेकर गन्धर्वराज पुनः स्तुति करते हैं :-

हे त्रिपुरान्तक! स्वयं पार्वती की सुन्दरता को आधार बनाकर या सौन्दर्य की आशा पर कामदेव ने धनुष धारण किया कि पार्वती के समान सुन्दरी विश्व में अन्य कोई नहीं है, इसके सौन्दर्य के बल पर मैं महादेव को मोहित कर लूँगा। ऐसे पुष्पायुध कामदेव (अरविन्द, अशोक, आम्र, नवमल्लिका तथा

नीलोत्पल - ये कामदेव के पञ्चपुष्पबाण हैं) को अपने सामने तृण के समान जलता हुआ देखकर भी यदि देवी पार्वती आपके अर्धाङ्ग में स्थान प्राप्त करके आप महादेव को स्त्री-लम्पट (स्त्रीवश अथवा स्त्रैण) समझती हैं या ये समझें कि परमयोगी महादेव को हमने जीत लिया, तो हे नियमपरायण! हे वरद! यह ठीक ही है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि स्त्रियों में पूर्वापर का विचार नहीं होता। वे प्रकृति से सरल ही होती हैं।

इस श्लोक में तीन सम्बोधन हैं। एक 'यमनिरत', जो दर्शाता है कि महादेव परमयोगी हैं। दूसरा 'वरद', इससे स्पष्ट होता है महादेव परमयोगी होते हुए भी अपने भक्तों के प्रेमवश लीला करने से भी नहीं चूकते। तीसरा सम्बोधन 'पुरमथन', यह अभिप्राय व्यक्त करता है कि महादेव परमदयालु होते हुए भी दुष्टों को शिक्षा देने में पीछे नहीं है।

****

पूर्व श्लोक में भगवान् शिव का दीनकारुण्य बताकर पुनः स्तुति करते हुए कहते हैं शंकर भगवान् स्वयं अमङ्गलाचरण करते हुए भी अपना स्मरण करनेवालों के लिए परममङ्गलरूप हैं।

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि।।२४।।

अन्वयार्थ : स्मरहर! = हे कामनाशक! **श्मशानेषु** = श्मशानों

में, **आक्रीडा** = क्रीड़ा करना, **पिशाचा:** = भूतपिशाचादि, **सहचरा:** = साथी, **चिताभस्म-आलेप:** = चिता की भस्म को सम्पूर्ण शरीर में लेपना,**नृ-करोटी-परिकर:** = नरमुण्डों के समूहों की, **स्रक्** = माला धारण करना, **एवम्-अपि** = इस प्रकार और भी (गजचर्मधारण इत्यादि), **तव** = आपका, **अखिलम्** = सम्पूर्ण, **शीलम्** = स्वभाव (चरित्र), **अमङ्गल्यम्** = अमङ्गल, **भवतु नाम** = भले ही रहे, **तथापि** = फिर भी, **वरद!** = हे वरदायक शंकर! **तव स्मर्तॄणाम्** = आपका स्मरण करनेवालों के लिए (आप), **परमम्** = परम (सर्वोत्कृष्ट), **मङ्गलम्** = मंगलस्वरूप, **असि** = हैं।

शिवतोषिणी

हे कामदेव को भस्म करनेवाले महादेव! आप श्मशानों में क्रीड़ा करते हो। भूत-पिशाच-प्रेत आपके संगी-साथी हैं। ऐसा क्यों करते हैं? क्योंकि श्मशान में एकान्त की सुविधा मिल जाती है, वहाँ भय के मारे कोई जाता नहीं है, तो सांसारिक लोगों की दृष्टि से बच जाते हैं। इसका आध्यात्मिक तात्पर्य यही है कि शरीररूपी महाश्मशान में इन्द्रियरूपी पिशाचों के साथ चेतनरूप आप महादेव खेल रहे हैं। उपरोक्त दोनों अर्थ युक्त ही हैं। लोग शरीर में पाउडर इत्यादि लगाते हैं। आप उसकी जगह सम्पूर्ण शरीर में चिता की भस्म ही लगा लेते हैं क्योंकि चिता-भस्म पर किसी की नजर नहीं पड़ती। इसका दूसरा कारण यह है कि शरीर तो भविष्य में भस्म होना ही है, इसलिए पहले से ही भस्म लगा लेते हैं। उज्जैन के महाकाल मन्दिर में पहले प्रतिदिन चिता-भस्म की ही आरती होती थी। पर आजकल तो कण्डे की भस्मी बनाकर आरती करते हैं।

लोग सोना-चाँदी, पुष्प इत्यादि की माला पहनते हैं, तो आपने श्मशान

से मनुष्यों की खोपड़ियाँ इकट्ठी करके माला बनाकर पहन ली। इसका रहस्य यह है कि मनुष्य जिस खोपड़ी का अहंकार करता है, वैसे अनन्त अहंकारों की आप माला पहनते हैं और भी गजचर्म के वस्त्र, सर्पहार इत्यादि पहनते हैं। इस प्रकार आपका सम्पूर्ण आचरण, वेशभूषा देखने में भले ही अमङ्गल हो, परन्तु आपका नित्य स्मरण करनेवाले भक्तों के लिए तो आप परममङ्गलकारक ही हैं। इसी से ही आपके शंकर, शम्भु, शिव ये कल्याणमय नाम सार्थक होते हैं। तभी तो लोग नित्य आपका स्मरण करते हैं।

****

इस प्रकार पूर्व में शंकरजी के अर्वाचीन पद (साकार विग्रह) की लीला-कथा कहकर अब साक्षात् परमपद एवं तत्प्राप्ति का उपाय बताते हुए पुनः स्तुति करते हैं।

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान्॥२५॥

अन्वयार्थ : **यमिनः** = योगीजन (संयमी पुरुष), **सविधम्** = पातञ्जलयोगविधि के अनुसार, **आत्तमरुतः** = प्राणवायु को रोककर (प्राणायाम विधि द्वारा), **मनः** = मन को, **प्रत्यक्चित्ते** = अन्तरात्मा में, **अवधाय** = समाहित (निश्चल) करके, **यत्-किम्-अपि** = जिस किसी भी (अनिर्वचनीय), **तत्त्वम्** = तत्त्व को, **आलोक्य** = देखकर, **प्रहृष्यद्रोमाणः** = रोमांचित (हर्षितरोम) हो, **प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः**

= अत्यन्तानन्दाश्रु से पूर्ण नेत्रोंवाले, **अमृतमये** = अमृत से पूर्ण, **ह्रदे** = सरोवर में, **निमज्य इव** = मानो डुबकी लगाकर, **अन्तः** = आन्तरिक (बाह्य से विलक्षण), **आह्लादम्** = आनन्द को, **दधति** = प्राप्त करते हैं, **तत्** = वह अद्वितीय तत्त्व, **किल** = श्रुति प्रसिद्ध, **भवान्** = आप ही तो हैं।

शिवतोषिणी

अभी तक **तवैश्वर्यं यत्तत्** ..... (४) में ईश्वर सत्ता को शास्त्र द्वारा सिद्ध करके **किमीहः किंकायः** ..... (५) में जो लोग ईश्वर सत्ता के प्रति शंका या कुतर्क करते हैं, उनकी निन्दा की। फिर **अजन्मानो लोकाः**....(६) में तर्क द्वारा भी ईश्वर-तत्त्व सिद्ध होता है, ऐसा प्रतिपादन किया। पुनः **त्रयी साख्यं**....(७) में विभिन्न दर्शनों का कथन करकेउनकी अनेकता का खण्डन करके कहा - जैसे सभी नदियों के जल का गन्तव्य स्थान समुद्र है, वैसे ही सभी दर्शनों के अनुयायी मनुष्यों के लिए एक गन्तव्य स्थान शिव ही है। फिर **महोक्षः खट्वाङ्गं** .... (८) से लेकर **श्मशानेष्वाक्रीडा** .... (२४) तक लीलाविग्रह का कथन किया है। मध्य में **ध्रुवं कश्चित्**.... (९) में जगत् केविषय में अनेक मतों का वर्णन किया। **क्रतौ सुप्ते** ....(२०) में कहा - ईश्वर ही जीवों के कर्मफलविधाता हैं। इस प्रकार मीमांसकों के सिद्धान्त का खण्डन किया।

अब परब्रह्म जो शिवतत्त्व है, जिसका योगी लोग समाधि में बैठकर अनुभव करते हैं, उसके विषय में पुनः गन्धर्वराज कथन करते हैं :- हे महेश्वर! योगीजन पातञ्जलयोग में कही गयी विधि से यम-नियम-आसन-प्राणायाम इत्यादि के द्वारा प्राण को वश में करके प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि द्वारा मन को प्रत्यक्चेतन (अन्तरात्मा) में समाहित कर जिस किसी भी अपूर्व (अनुपम) तत्त्व को देखकर आनन्द का उद्रेक होने पर रोमांचित (हर्षितरोम) हो

अत्यन्त आनन्द से अश्रुपूर्ण नेत्रोंवाले हो जाते हैं। फिर वे योगी अमृत के समुद्र में डूबे हुए के समान अभयपद में स्थित हुए एक आन्तरिक आनन्द का अनुभव करते हैं। वह अपूर्व (जिसका शब्दों से व्याख्यान नहीं किया जा सकता है) आनन्दस्वरूप तत्त्व आप ही हैं।

उपरोक्त हर्षितरोम शब्द का अर्थ रोम खड़े होना है। भय की स्थिति में रोम खड़े होते हैं और आनन्द की स्थिति में भी। परन्तु यहाँ तो प्रसंग आनन्द का है। अत्यन्त दुःख में भी नेत्र अश्रुओं से भर जाते हैं, पर आनन्दाश्रुओं का प्रसंग है। इस श्लोक में भगवान् शिव के ध्यान-विग्रह का वर्णन किया है।

****

उपरोक्त श्लोक में भगवान् शिव के योगीजनों द्वारा आत्मरूप से अनुभव किए जानेवाले स्वरूप का वर्णन करके अब अष्टमूर्तिरूप का वर्णन करते हुए स्तुति करते हैं :-

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि।।२६।।

अन्वयार्थ: त्वम् अर्कः असि = तुम सूर्य हो, **त्वम् सोमः असि** = तुम चन्द्रमा हो, **त्वम् पवनः असि** = तुम वायु हो, **त्वम् हुतवहः असि** = तुम अग्नि हो, **त्वम् आपः असि** = तुम जल हो, **त्वम् व्योम असि** = तुम आकाश हो, **त्वम् धरणिः असि** = तुम पृथ्वी हो, **च** = और, **त्वम् उ आत्मा असि** = तुम्हीं आत्मा (यजमान) हो, **इति** = बस यह परमात्मा का अष्टमूर्तिरूप हुआ, **एवम्** = इस प्रकार,

परिणताः = दृढ़ आग्रही विद्वज्जन, **त्वयि** = आपके विषय में, **परिच्छिन्नाम् गिरम्** = संकुचित (परिच्छिन्न रूप बतलानेवाली) वाणी, **बिभ्रतु** = चाहे बोला करें, **तु** = परन्तु, **वयम्** = हम तो, **इह** = इस जगत् में, **तत् तत्त्वम्** = उस तत्त्व (वस्तु) को, **न विद्मः** = नहीं जानते, **यत्** = जो, **त्वम्** = आप, **न भवसि** = नहीं हो।

शिवतोषिणी

वैदिक परम्परा में भगवान् शिव की अष्टमूर्ति प्रसिद्ध है। वस्तुतः जो निर्गुण-निराकार तत्त्व है, वही मायारूपी उपाधि से युक्त होकर ईश्वर-तत्त्व (सगुण-निराकार) हो जाता है। सचमुच तो वह अनाम-अरूप है, परन्तु आप जिस रूप से चाहें उसका ध्यान कर सकते हैं। शिवपुराण में उस तत्त्व को **शिव** नाम से कह दिया जाता है। विष्णुपुराण में **विष्णु** नाम से तथा देवीपुराण में **देवी** नाम से। इसलिए नामभेद से उस परमतत्त्व में कोई विरोध नहीं है। लोग कहते हैं कि पुराणों में विसंगति है। वस्तुतः विसंगति पुराणों में नहीं, समझ में है।

सम्पूर्ण सृष्टि महादेव का सगुण-साकार विग्रह है। इसी में से अष्टमूर्ति के रूप में लोग उनका पूजन करते हैं। वह अष्टमूर्ति निम्न प्रकार से है :- आकाशतत्त्व, वायुतत्त्व,अग्नितत्त्व, जलतत्त्व, पृथ्वीतत्त्व, सूर्यतत्त्व, चन्द्रतत्त्व तथा यजमानतत्त्व। आकाशतत्त्व का मन्दिर चिदम्बरम् में, वायुतत्त्व का कालहस्ती में, अग्नितत्त्व का अरुणाचलम् में, जलतत्त्व का जम्बूकेश्वर (त्रिचरापल्ली) में, पृथ्वीतत्त्व का शिवकाँची में और यजमानतत्त्व का मन्दिर गोवा के समीप गोकर्ण में है। सूर्य और चन्द्र तो प्रत्यक्ष ही हैं। इनसे सम्बन्धित आठ मन्त्र हैं। उनका वर्णन आगे किया जाएगा।

पुष्पदन्ताचार्यजी कहते हैं कि हे परमेश्वर! आपके विषय में परिपक्व बुद्धिवाले वैदिक लोग कहते हैं कि आप सूर्य हैं, आप चन्द्रमा हैं, आप वायु हैं,

आप अग्नि है, आप जल हैं, आप पृथ्वी हैं, आप आकाश हैं और आप ही यजमान हैं। वे वैदिक लोग संकुचित (अष्टमूर्तिमात्र में सीमित करनेवाली) वाणी भले ही आपके विषय में बोलें, मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु मुझे तो इस संसार में कोई ऐसी वस्तु ही नहीं दीखती जो आप न हों, अर्थात् आपसे अतिरिक्त किसी तत्त्व को मैं नहीं जानता हूँ। इस प्रकार इस श्लोक में भगवान् शिव के अष्टमूर्ति विग्रह का वर्णन करते हुए भगवान् शिव को सर्वात्मा बताया गया है।

****

इस प्रकार पूर्वोक्त 'मनः प्रत्यक्चित्ते...' श्लोक के द्वारा त्वम् पदार्थ का और '**त्वमर्कस्त्वं सोमः...**' श्लोक के द्वारा तत् पदार्थ का शोधन कर इस अग्रिम श्लोक से अखण्ड-वाक्यार्थ का प्रतिपादन गन्धर्वराज करते हैं –

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम्।।२७।।

अन्वयार्थः शरणद! = शरणागतों को शरण देनेवाले हे महादेव! **त्रयीं** = तीन वेदों को, **तिस्रः वृत्तीः** = जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तिरूपी तीन वृत्तियों को, **अथो** = और, **त्रिभुवनम्** = तीन लोकों (स्वर्ग-अन्तरिक्ष-भूमि) को, **त्रीन् सुरान्** = ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीन देवताओं को, **अपि** = भी, **अकाराद्यैः** = अकार-उकार-मकाररूपी, **त्रिभिः वर्णैः** = तीन वर्णों के द्वारा, **व्यस्तम्** = विभक्त हुआ,

अभिदधद् = (शक्तिवृत्ति से) बतलानेवाला, (तथा) **तीर्णविकृति** = विकारों को पार किये हुए (विकारशून्य), **तुरीयम्** = चौथे, **ते** = आपके, **धाम** = धाम (चैतन्यस्वरूप) को, **अणुभिः** = सूक्ष्म (अर्धमात्रारूप), **ध्वनिभिः** = ध्वनियों द्वारा, **अवरुन्धानम्** = लक्षित करता हुआ, **समस्तम्** = अविभक्त हुआ, **ॐ इति पदम्** = ॐ यह पद, **त्वाम्** = आपको, **गृणाति** = प्रतिपादन करता है (कथन करता है)।

शिवतोषिणी

गन्धर्वराज आगे कहते हैं - हे अपने भक्तों को शरण देनेवाले, उनकी रक्षा करनेवाले, उनको अपना स्वरूप प्रदान करनेवाले परमेश्वर! अकार-उकार-मकाररूप से तीन वर्णों में विभक्त हुआ (व्यस्तम्) ॐ यह पद आपके सविशेष स्वरूप का शक्तिवृत्ति से कथन करता है। तीनों वेदों का प्रतिपादन करता है, अकार-ऋग्वेद, उकार-यजुर्वेद, मकार-सामवेद। इस प्रकार तीनों वेद ॐ के अन्तर्गत हैं। तीन वृत्तियों (जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति) का भी कथन करता है। जैसे, अकार-जाग्रत (व्यष्टि-अभिमानी वैश्वानर), उकार-स्वप्न (व्यष्टि-अभिमानी तैजस), मकार-सुषुप्ति (व्यष्टि-अभिमानी प्राज्ञ)। अकार-जाग्रत (समष्टि-अभिमानी विराट्), उकार-स्वप्न (समष्टि-अभिमानी हिरण्यगर्भ), मकार-सुषुप्ति (समष्टि-अभिमानी ईश्वर)।

ॐकार तीनों लोकों को भी बताता है, अकार-पृथ्वी, उकार-अन्तरिक्षलोक, मकार-स्वर्गलोक। तीन देवों को कहता है, अकार-ब्रह्मा, उकार-विष्णु, मकार-रुद्र। तीनों गुणों का भी कथन करता है, अकार-सत्त्वगुण, उकार-रजोगुण, मकार-तमोगुण। इस प्रकार त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण जगत् इस ॐ के अन्तर्गत है, यह ॐकार का ध्येय हो गया। अविभक्त हुआ समस्त ॐ पद त्रिगुण के विकार से रहित आपके निर्विशेष तुरीय पद का सूक्ष्म (अर्धमात्रारूप) ध्वनियों के द्वारा (लक्षणावृत्ति से) कथन करता है। इस प्रकार विभक्त और अविभक्त दोनों रूपों में ही

यह ॐ पद आपका ही कथन करता है। शब्द का जो अर्थ होता है उसी का वह कथन करता है। जैसे, लोक में किसी का कोई नाम होता है वैसे ही परमात्मा शिव का नाम ॐ है।

ऊपरोक्त जो सूक्ष्म-ध्वनि (अणुध्वनि) है, वह पहले अर्धमात्रा, फिर उसका आधा, फिर उसका आधा इस प्रकार सूक्ष्म होती जाती है। यह ध्वनि जैसे-जैसे सूक्ष्म होती है, वैसे-वैसे व्यापक होती जाती है। जैसे, घण्टे की आवाज धीरे-धीरे सूक्ष्म और व्यापक होती जाती है। यह साधना का विषय है, साधना करने से ही इसका अनुभव होता है। दीर्घ प्रणव का अभ्यास करना पड़ता है। चित्त की चंचलता दूर करने के लिए पहले दीर्घ प्रणव का अकार की प्रधानता से अभ्यास करना पड़ता है, इससे चित्त स्थिर हो जाता है।

उपरोक्त सम्पूर्ण अर्थ का भली प्रकार से अभ्यास करके उसका चिन्तन करते हुए प्रणव जप किया जाता है। संन्यासी के लिए कहा है कि यदि वह इस प्रकार १२ हजार जप प्रतिदिन करता है तो उसे एक वर्ष में परब्रह्म का प्रकाश हो जाता है। परब्रह्म-प्राप्ति के लिए यह एक उत्कृष्ट साधना है। यह प्रणवमन्त्र अत्यन्त रहस्यात्मक है। इस प्रकार से इस श्लोक में शिव के प्रणव-विग्रह का कथन किया गया है।

****

इस प्रकार सविशेष-निर्विशेष परमात्मा के वाचक प्रणव का सविग्रह निरूपण करके इसमें सर्वसाधारण मनुष्यों का अधिकार न समझकर करुणामय गन्धर्वराज समस्त मनुष्यों के कल्याणार्थ परमात्मा शिव के प्रसिद्ध आठ नामों का कथन करते हुए पुनः स्तुति करते हैं :-

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम्।
अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते।।२८।।

अन्वयार्थ : **देव!** = हे दिव्यस्वरूप ईश्वर! **भवः** = भव (संसार को उत्पन्न करनेवाला या स्वयं ही संसार के रूप में परिणत हुआ), **शर्वः** = शर्व (संहारक), **रुद्रः** = रुद्र (दुष्टों को रुलानेवाला), **पशुपतिः** = पशुपति (जीवरूपी पशुओं के अधिपति), **अथ-उग्रः** = और उग्र (प्रचण्डरूपवाला), **सहमहान्** = सहमहान् (महादेव), **तथा भीम-ईशानौ** = तथा भीम और ईशान (भयंकर और प्रशासक), **इति** = इस प्रकार, **यद् इदम्** = जो ये, **अभिधानाष्टकम्** = कहे गये आठ नाम, **अमुष्मिन्** = इनमें, **प्रत्येकम्** = प्रत्येक नाम के साथ, **श्रुतिः अपि** = वेद भी, **प्रविचरति** = प्रतिपादन करता हुआ विचरता है, **अस्मै** = इस, **प्रियाय** = प्रियस्वरूप, **धाम्ने** = प्रकाशस्वरूप, **भवते** = आपको, **प्रणिहितनमस्यः अस्मि** = मैं सावधानीपूर्वक प्रणाम करने का अधिकारी हूँ (मैं प्रणाम करता हूँ)।

शिवतोषिणी

हे दिव्यस्वरूप परमेश्वर! **भवः - भवति इति भवः, भवति अस्माज्जगदिति वा भवः** - जो उत्पन्न होता है या जिससे उत्पन्न होता है दोनों को ही भव कहते हैं। उत्पन्न होनेवाला होने से जगत् का भी एक नाम भव है और महादेव से ही जगत् उत्पन्न होता है, इसलिए महादेव का भी एक नाम भव है। **ॐ भवाय नमः** - यह इसका मन्त्र है। **शर्वः** - शर्व शब्द **शृ हिंसायाम्** धातु से बना है, इसका अर्थ है संहार करनेवाला। महादेव अपने भक्तों के अज्ञान का संहार करते हैं अथवा प्रलयकाल में सभी जीवों का संहार करते हैं, इसलिए

इनका नाम शर्व है। मन्त्र - **ॐ शर्वाय नमः। रुद्रः - रोदयति इति रुद्रः** - दुर्जनों को दण्ड देकर रुलाते हैं या प्रलयकाल में सभी को रुलाते हैं, इसलिए महादेव का एक नाम रुद्र है। मन्त्र - **ॐ रुद्राय नमः।**

पशुपतिः - पशूनां पतिः इति पशुपतिः। जीवरूपी पशुओं के अधिपति होने से महादेव का एक नाम पशुपति है। जीव मायारूपी पाश से ममत्व के खूँटे से बँधा हुआ है। इस कारण इस शरीर के आगे की सोच ही नहीं सकता है। प्रत्यक्ष देखता है कि शरीर रहनेवाला नहीं है, नश्वर है। फिर भी इसको कभी विचार नहीं होता कि मैं वस्तुतः शरीर नहीं हूँ, इसलिए जीव पशुधर्मवाला ही है। अथवा जैसे पशु को चारे और डण्डे से नियन्त्रण में किया जाता है, ऐसे ही जीव को भी कुछ रुपये आदि का लोभ दिखाकर या भय दिखाकर जो करवाना चाहें, वह कर देता है, इसलिए जीव पशु है। सभी जीवों के स्वामी होने से महादेव पशुपति हो गए। पशुपति प्रसन्न हो जाएँ तो इसका मायारूपी पाश काटकर मुक्त कर सकते हैं। मन्त्र - **ॐ पशुपतये नमः।**

उग्रः - अभक्तों का संहार करने के लिए कभी-कभी प्रचण्ड रूप धारण करते हैं, इसलिए उनका एक नाम उग्र भी है। मन्त्र - **ॐ नम उग्राय। सहमहान्** - महान् के सहित देव शब्द अर्थात् महादेव। मन्त्र - **ॐ महादेवाय नमः। भीमः** - भीम का अर्थ है भयंकर। भगवान् शंकर पापियों को भयंकर रूप से दीखते हैं। वैसे ये वेशभूषा के द्वारा भी भयंकर दीखते हैं। मन्त्र - **ॐ नमो भीमाय। ईशानः** - सभी पर शासन करनेवाले होने से भगवान् शिव का एक नाम ईशान भी है। **ॐ नम ईशानाय।** इस प्रकार ये भगवान् शिव के आठ नाम हैं। पुष्पदन्ताचार्यजी कहते हैं, 'हे देव! उपरोक्त आपके प्रत्येक नाम का वेद भी प्रतिपादन करता है। **देवश्रुतिरपि** - इस शब्द के दो तात्पर्य हो सकते हैं। एक तो ऊपर वर्णित है। दूसरा है - देवताओं के कान भी इन नामों के सुनने में लगे रहते हैं। इस प्रकार इस प्रिय तेजस्वरूप आपके प्रति मेरा प्रसारित शरीर से (दण्डवत्) प्रणाम है।

श्लोक संख्या २६ में मूर्तिविग्रह का, और यहाँ पर नामविग्रह का वर्णन किया है। इनका परस्पर सम्बन्ध भी है। **१) क्षित्यात्मने शर्वाय नमः, २) अबात्मने भवाय नमः, ३) वह्न्यात्मने रुद्राय नमः, ४) वाय्वात्मने उग्राय नमः, ५) आकाशात्मने भीमाय नमः, ६) जीवात्मने पशुपतये नमः, ७) सोमात्मने महादेवाय नमः, ८) सूर्यात्मने ईशानाय नमः।** इन अलग-अलग अष्टमन्त्रों के द्वारा अष्टमूर्तियों में महादेव की आराधना की जा सकती है।

****

पूर्व श्लोक में अष्टमूर्ति को प्रणाम करके अब अत्यन्त भावविभोर होकर सर्वरूप में भगवान् शिव को पुष्पदन्ताचार्यजी प्रणाम करते हुए पुनः स्तुति करते हैं-

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति सर्वाय च नमः।।२९।।

अन्वयार्थ : **प्रियदव**! = हे निर्जनवन प्रिय महादेव! **नेदिष्ठाय** = अत्यन्त समीपवर्ती, **च** = और, **दविष्ठाय** = अति दूरवर्ती, **ते नमो नमः** = आपको बार-बार नमस्कार, **स्मरहर**! = हे कामनाशक रुद्र! **क्षोदिष्ठाय च** = अत्यन्त सूक्ष्म और, **महिष्ठाय ते** = अत्यधिक महान् आपको, **नमो नमः** = बार-बार नमस्कार। **त्रिनयन**! = हे त्रिनेत्रधारी शिवजी! **वर्षिष्ठाय च** = अत्यन्त वृद्ध (जो अनादिकाल से हैं) और, **यविष्ठाय ते** = अत्यन्त तरुणरूप आपको बार-बार नमस्कार है, **सर्वस्मै** = सर्वरूप, **च** = और, **तदिदमिति सर्वाय** = परोक्ष और अपरोक्ष

सम्पूर्ण रूपों में, **ते** = आपको, **नमो नमः** = बार-बार नमस्कार है।

शिवतोषिणी

हे प्रियदव (एकान्तप्रिय) महादेव! **अतिशयेन निकटः - नेदिष्ठः। नेदिष्ठाय नमः**, अत्यन्त समीपवर्ती महादेव को नमस्कार है। जो भक्त शुद्धचित्त होकर आत्मैक्य भावना से शिवजी को भजते हैं, उनके लिए वे अत्यन्त समीप हैं। **अतिशयेन दूरः - दविष्ठः। च दविष्ठाय ते नमो नमः** - और अत्यधिक दूरवर्ती आप महादेव को बार-बार नमस्कार है। भेददृष्टिवाले अशुद्ध चित्तवालों के लिए दूर भी हैं। हे कामदेव को भस्म करनेवाले रुद्रस्वरूप! **अतिशयेन क्षुद्रः - क्षोदिष्ठः। क्षोदिष्ठाय च नमो नमः**- अत्यन्त सूक्ष्म को भी बार-बार नमस्कार। सामान्य व्यक्ति की दृष्टि का विषय न होने से सूक्ष्म हैं। **अतिशयेन महान् - महिष्ठः, महिष्ठाय च नमो नमः**, अत्यन्त व्यापक आपको बारम्बार नमस्कार है। सर्वत्र विद्यमान होने से महान् (व्यापक) हैं। हे त्रिनयन शिवजी! **अतिशयेन वृद्धः - वर्षिष्ठः। वर्षिष्ठाय च** = और जो अत्यन्त वृद्ध शिव है उसको भी बार-बार नमस्कार है। अनादिकाल से होने के कारण वृद्ध कहा है। **अतिशयेन युवा - यविष्ठः। यविष्ठाय ते नमो नमः**। अत्यन्त तरुण आपको नमस्कार है। कभी वृद्ध नहीं होते हैं, इसलिए तरुण कहा है। कोई वस्तु प्रत्यक्ष है जैसे, जगत्। कोई अप्रत्यक्ष (परोक्ष) है जैसे, स्वर्ग इत्यादि। तद् का अर्थ परोक्ष और इदम् का अर्थ प्रत्यक्ष है। इस प्रकार परोक्ष और प्रत्यक्ष सम्पूर्ण रूपों में आपको बार-बार नमस्कार है।

****

इस प्रकार भगवान् शिव को सर्वतोभावेन प्रणाम करके अग्रिम श्लोक में पुष्पदन्ताचार्यजी पूर्वजन्मों में और अब मुक्त होने से आगे भी प्रणाम न कर पाने पर खेद-प्रकटपूर्वक क्षमा-याचना करते हुए स्तुति कर रहे हैं : -

वपुष्प्रादुर्भावादनुमितमिदं जन्मनि पुरा

पुरारे न क्वापि क्षणमपि भवन्तं प्रणतवान्।

नमन्मुक्तः सम्प्रत्यहमतनुरग्रेऽप्यनतिमान्

इतीश क्षन्तव्यं तदिदमपराधद्वयमपि।।३०।।

अन्वयार्थः पुरारे! = हे त्रिपुरारि! **वपुष्प्रादुर्भावाद्** = शरीर की उत्पत्ति होने के कारण, **इदम्** = यह, **अनुमितम्** = अनुमान किया जाता है कि, **पुरा** = पूर्व, **जन्मनि** = जन्म में, **क्वापि** = कहीं भी (कभी-भी), **क्षणम्** = क्षणमात्र, **अपि** = भी, **भवन्तम्** = आपको, **न प्रणतवान्** = प्रणाम नहीं किया,(और) **सम्प्रति** = अभी, **नमन्** = प्रणाम करता हुआ, **मुक्तः** = मुक्त हो गया, (इसलिए) **अहम्** = मैं, **अतनुः** = शरीररहित हो गया, (अतः), **अग्रेऽपि** = आगे भी, **अनतिमान्** = प्रणाम नहीं कर सकता, **इति** = इसलिए, **ईश!** = हे स्वामी! **तद्** = वह (पूर्वजन्म का प्रणाम न करना), **इदम्** = मुक्त होने की दशा में प्रणाम न करना, **अपराधद्वयम् अपि** = दोनों ही अपराधों को, **क्षन्तव्यम्** = क्षमा करें।

शिवतोषिणी

गन्धर्वराज कहते हैं, हे प्रभो! त्रिपुरारि! हमें शरीर धारण करना पड़ा है, इससे अनुमान होता है, पहले जन्म में कहीं भी क्षणमात्र कभी आपको प्रणाम नहीं किया। आपको प्रणाम करने का तो फल मुक्ति है।

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय।।

(महा. शान्ति. - ४७.९१)

कोई परमेश्वर को एक बार प्रणाम कर लेता है तो वह प्रणाम दस अश्वमेध यश के तुल्य होता है। दस अश्वमेध यज्ञ करनेवाला भले ही जन्म प्राप्त करे, परन्तु परमेश्वर को प्रणाम करनेवाला जन्म नहीं लेता है। किसी को शंका हो सकती है कि हमने तो बहुत बार प्रणाम किया है, फिर मुक्त क्यों नहीं हुए!

वास्तव में आपने अभी तक प्रणाम किया ही नहीं। जीवन भर व्यक्ति महादेव को जल चढ़ाता है, परन्तु वह जल महादेव पर पहुँचता ही नहीं, बीच में कामना आ जाती है। निष्कामभाव से जल चढ़ाकर, प्रणाम करके देखो। कभी-कभी बड़ा आश्चर्य होता है कि यह जीव जब से होश में आया है, तब से भिखमंगावृत्ति में ही रहा है। अभी तक महादेव से परिचय ही नहीं किया। अभी तक यह बुद्धि नहीं आई कि कह दे, 'महादेव! कृपा करो। अब मेरी माँग समाप्त है। अब आप जैसा रखना चाहते हो, वैसे ही रहूँगा। जो करवाना चाहते हो, वही करूँगा।' प्रणाम का अर्थ होता है - **सीमित अहंता का समर्पण**। जैसे, नदी अपनी अहंता का समुद्र में समर्पण करती है, वैसे ही अपनी सीमित अहंता महादेव में समर्पित करना ही प्रणाम है।

पुष्पदन्ताचार्यजी कहते हैं कि इस जन्म में मैं सावधान हो गया। मैंने आपको प्रणाम कर लिया। **नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो**...। इसलिए आगे शरीर धारण नहीं करना पड़ेगा यह पक्का हो गया है। शरीर ही नहीं मिलेगा, तो प्रणाम करने को भी नहीं मिलेगा क्योंकि प्रणाम तो शरीर के द्वारा ही होता है। पिछले जन्म में शरीर था, पर प्रमादवश आपको प्रणाम नहीं किया, आगे शरीर नहीं मिलेगा, इसलिए प्रणाम नहीं कर सकता। इसलिए हे स्वामी! आप मेरे प्रणाम न करनेरूपी इन दोनों अपराधों को क्षमा कर दीजिए। बस, यही प्रार्थना है।

यहाँ पर पुष्पदन्ताचार्यजी भावविभोर हो गये। आगे छन्द ही बदल जाता है। यहाँ तक शिखरिणी छन्द था, आगे दूसरा छन्द चलेगा।

****

गन्धर्वराज पुनः प्रणाम करते हैं। ऐसा लगता है कि अभी प्रणाम करने से तृप्त नहीं हुए। पूर्व श्लोक में सीमित अहंता परमेश्वर को समर्पित की, अब सविशेष-निर्विशेष उभयस्वरूप परमात्मा शिव को नमस्कार कर रहे हैं :

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः॥३१॥

अन्वयार्थ : **विश्वोत्पत्तौ** = चराचर विश्व की उत्पत्तिकाल में, **बहलरजसे** = रजोगुणविशिष्ट, **भवाय** = भव (ब्रह्मा नामवाले) को, **नमो नमः** = बार-बार नमस्कार है, **जनसुखकृते** = सभी जीवों को सुख देने का निमित्त होने पर, **सत्त्वोद्रिक्तौ** = सत्त्वोद्रेककाल में, **मृडाय** = मृड (विष्णु स्वरूपवाले) को, **नमो नमः** = बार-बार नमस्कार है, **तत्संहारे** = विश्व के संहारकाल में, **प्रबलतमसे** = तमोगुण प्रधान, **हराय** = हर (रुद्रस्वरूप) को, **नमो नमः** = बार-बार नमस्कार है, **निस्त्रैगुण्ये** = तथा त्रिगुणातीत, **प्रमहसि** = मायादि लेशरहित, **पदे** = मुक्तस्वरूप, **शिवाय** = शिव को, **नमो नमः** = बार-बार नमस्कार है।

अब श्री पुष्पदन्त शिव के सविशेष-निर्विशेष दोनों रूपों को प्रणाम करते हुए उपसंहार कर रहे हैं। कहते हैं - जब आप विश्व की उत्पत्ति में निमित्त बनते हैं, तब रजोगुणप्रधान हो जाते हैं। उस समय आपका नाम भव हो जाता है। ऐसे रजोगुणप्रधान भवरूप आपको बारम्बार नमस्कार है। जब आप जगत् का संहार करते हैं उस समय तमोगुणप्रधान हो जाते हैं और आपका नाम हर हो जाता है - **हरति इति हरः**, ऐसे सम्पूर्ण विश्व को अपने में लीन (संहार) करनेवाले हर को मेरा बारम्बार प्रणाम है।

जब आप जगत् को सुख देनेवाले (पालन करनेवाले) होते हैं, आपमें सत्त्व का उद्रेक होता है, तब आपका नाम मृड हो जाता है। **जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः**, यहाँ पर **जनसुखकृते** में निमित्तवाची **कृत** अव्यय स्वीकार करके '**जनसुख (पालन)**' को निमित्त मानते हैं-जैसे, **विश्वोत्पत्तौ, तत्संहारे**। ऊपर उत्पत्ति और संहार को निमित्त बनाया। यहाँ पालन को निमित्त बनाने के लिए सप्तमी माननी पड़ेगी। तब दूसरी चतुर्थी विभक्ति होनी चाहिए, पर वह भी सप्तमी (सत्त्वोद्रिक्तौ) है, इसलिए मानते हैं कि **जनसुखकृते** - जनसुख करने के निमित्त **सत्त्वोद्रिक्तौ** - सत्त्व का उद्रेक होने पर मृड नामधारी आपको बार-बार नमस्कार है। **मृड-सुखने** धातु है।

अथवा '**जनानां सुखं करोतीति - जनसुखकृत्**' ऐसा समास मानने पर **जनसुखकृते** यह चतुर्थी मिलती है। इस पक्ष में **सत्त्वोद्रिक्तौ** (सत्त्वोद्रेक काल में) **जनसुखकृते मृडाय** - पालन करनेवाले मृड को बारम्बार नमस्कार है, ऐसा अर्थ निकलता है।

तीनों गुणों का निमित्त जहाँ पर समाप्त हो जाता है, ऐसे मायास्पर्शरहित चैतन्य तेजःस्वरूप (मोक्ष) की प्राप्ति के निमित्त निर्गुणस्वरूप शिवनामवाले आपको बार-बार नमस्कार है। इस प्रकार निर्विशेष और सविशेष दोनों रूपों को प्रणाम कर लिया।

****

इस प्रकार सर्वथा मन-वाणी के अविषय परमेश्वर की स्तुति करके पूर्वकृत अपनी उद्दण्डता का उपसंहार करते हुए गन्धर्वराज कहते हैं :-

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्-
वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम्।।३२।।

अन्वयार्थ : **वरद!** = हे सर्वाभीष्टप्रद महेश्वर! **कृशपरिणति** = अल्प सामर्थ्यवाला (अपरिपक्व), **क्लेशवश्यम्** = अविद्यादि पञ्चक्लेशों के अधीन, **इदम्** = यह (मेरा), **चेतः** = चित्त, **च** = तो, **क्व** = कहाँ? **च** = और, **गुणसीमोल्लङ्घिनी** = गुणों की सीमा को लाँघनेवाली, **तव** = आपकी, **शश्वत्** = शाश्वत, **ऋद्धिः** = महिमा, **क्व** = कहाँ? **इति** = इस प्रकार, **चकितम्** = भययुक्त, **माम्** = मुझे, **भक्तिः** = आपके प्रति मेरी भक्ति ने, **अमन्दीकृत्य** = उत्साहित कर बलात्, **वाक्यपुष्पोपहारम्** = यह स्तुतिरूप पुष्पों का उपहार, **ते** **चरणयोः** = आपके चरणों में, **आधात्** = समर्पण करवा दिया।

शिवतोषिणी

कहते हैं - मैंने स्तोत्र बनाने से पहले आपसे अनुमति भी ली थी और स्तोत्र बन भी गया है। यह भी सिद्ध कर दिया है कि अपनी बुद्धि के अनुसार स्तुति करने में कोई दोष नहीं है। परन्तु हे अभीष्टप्रद भगवन्! कहाँ तो यह

अपरिपक्व मेरा चित्त - अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश पञ्चक्लेश के नित्य वश में रहनेवाला, उसको एकाग्र करना बहुत ही कठिन है और कहाँ गुणों की सीमा को लाँघनेवाली आपकी नित्य महिमा। श्रुति में भी समस्त भूतजात को आपकी महिमा का एक पाद कहा है।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि। गुणों के सहित सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप आपके पादान्तर्वर्ती है। सारा जगत् तो गुणात्मक है। अतः **गुणसीमोल्लङ्घिनी** आपकी महिमा सिद्ध ही है, ऐसा जानकर मैं तो भयभीत हो गया था। स्तोत्ररूपी पुष्पाञ्जलि आपके चरणों में अर्पित करना चाहता था, परन्तु हाथ वहीं रुक गये। सोचा यह पुष्पाञ्जलि आपके चरणों में अर्पित नहीं हो पाएगी। तब आपके प्रति की गई मेरी भक्ति ने मन्द पड़े हुए मुझको उत्साहित करके मानो बलात् ही आपके चरणों में स्तोत्ररूपी पुष्पाञ्जलि चढ़ा दी। मेरी तो हिम्मत नहीं थी। यहाँ पर भक्ति को कर्ता बनाया है - **भक्तिः आधात्।** यहाँ भाव यह है - मानो भक्ति ने ही आपके चरणों में पुष्पाञ्जलि अर्पित की, मैंने नहीं। हे वर देनेवाले शंकर! ऐसा वर दीजिए जिससे मुझमें यह भक्ति ही दृढ़ हो जाए।

****

उपरोक्त श्लोक में भगवान् शिव की स्तुति करने के अयोग्य अपने को बताते हुए, दृढ़ भक्ति में सर्वोत्कृष्ट फलदान का सामर्थ्य दर्शाया है। पुनः भगवान् शंकर की असीम महिमा का वर्णन करते हुए गन्धर्वराज स्तुति करते हैं :-

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति।।३२।।

अन्वयार्थ : ईश! = हे महेश्वर! **यदि** = यदि,

असितगिरिसमम् = नील पर्वत के समान, **कज्जलम्** = स्याही, **स्यात्** = होवे, **सिन्धुपात्रे** = सागररूप दवात में, **सुरतरुवरशाखा** = कल्पवृक्ष की शाखाएँ, **लेखनी** = कलम होवे, **उर्वी** = सम्पूर्ण पृथ्वी, **पत्रम्** = कागज हो, (उपरोक्त सभी साधनों को) **गृहीत्वा** = लेकर, **शारदा** = स्वयं सरस्वती, **सर्वकालम्** = अनन्तकाल तक, **लिखति** = लिखती रहे, **तत्** = तो, **अपि** = भी, **तव** = आपके, **गुणानाम्** = असीम गुणों का, **पारं न याति** = पार नहीं पा सकती है।

शिवतोषिणी

पूर्व में ही कहा है - **स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः** आपकी महिमा को पूर्णरूप से कौन कह सकते हैं? क्योंकि निर्गुणरूप से तो वह किसी का विषय ही नहीं बन सकती है और सगुणरूप की महिमा अनन्त है। वह भी पूर्णरूप से कथन करना सम्भव नहीं है। कोई शंका करे कि सम्पूर्ण गुणों का व्याख्यान करने के लिए संसार में कोई-न-कोई साधन तो होगा ही। इसका समाधान करते हुए गन्धर्वराज पुनः कहते हैं, 'हे महेश्वर! यदि अनन्त विस्तारवाले नीलपर्वत के समान स्याही होवे और अनन्त विस्तारवाले समुद्र को पात्र (दवात) बनाकर उसमें वह स्याही घोल ली जाए। अनन्त विस्तारवाले कल्पवृक्ष की शाखाओं की कलम बना ली जाए (क्योंकि वह संकल्प करते ही स्वयं बढ़ती जाएगी)। अनन्त विस्तारवाली पृथ्वी को कागज के रूप में परिणत करके इन सब साधनों को लेकर स्वयं भगवती सरस्वती अनन्तकाल तक सतत लिखती ही रहे, तो भी आपके असीम गुणों का पार पाने में समर्थ नहीं हो सकती।

महिम्नः पारं ते ...(१) श्लोक में ब्रह्माजी को भगवान् शिव की पूर्णरूप से महिमा कथन करने में असमर्थ बताकर **मधुस्फीता वाचः** ...(३)

इस श्लोक में दर्शाया कि आपको बृहस्पति की वाणी भी आकर्षित नहीं कर सकती है। अब कहा कि दूसरों की क्या बात कहें, विद्या की देवी साक्षात् भगवती सरस्वती भी आपके गुणों का पार नहीं पा सकती है। यहाँ पर गन्धर्वराज का भाव यह है जब सर्व संसाधनों से युक्त सर्वज्ञ लोगों की स्तुति भी आपको आकर्षित नहीं कर सकती, तो मुझ अल्पज्ञ द्वारा रचित यह स्तुति आपको कैसे आकर्षित कर सकती है? इस प्रकार का भाव प्रकट कर गन्धर्वराज अपनी वाणी को विराम देते हैं।

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
प्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य।
सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार।।३४।।

अन्वयार्थ : असुरसुरमुनीन्द्रैः = देव,असुर और महामुनियों के द्वारा, **अर्चितस्य** = पूजित, **प्रथितगुणमहिम्नः** = शास्त्र प्रतिपाद्य गुणों की महिमा से गुँथा हुआ, **निर्गुणस्य** = (वस्तुतः तो) निर्गुण, **ईश्वरस्य** = भगवान्, **इन्दुमौलेः** = चन्द्रभाल (शिवजी) के, **एतत्** = इस, **रुचिरं स्तोत्रम्** = मनोहर स्तोत्र को, **सकलगणवरिष्ठः** = सम्पूर्ण गन्धर्वगण में वरिष्ठ, **पुष्पदन्ताभिधानः** = पुष्पदन्त नामक गन्धर्व ने, **अलघुवृत्तैः** = बड़े-बड़े छन्दों में, **चकार** = रचा।

शिवतोषिणी

विष्णु आदि श्रेष्ठ देवता, बाणासुर-रावण इत्यादि प्रमुख दैत्य तथा बड़े-बड़े मुनियों के द्वारा आराधित, जैसे माला में मणि गुँथे रहते हैं, वैसे ही शास्त्रप्रतिपाद्य सद्गुणों के द्वारा गुँथे (युक्त) हुए, परन्तु वस्तुतः निर्गुणस्वरूप

भगवान् चन्द्रशेखर के इस कर्णप्रिय स्तोत्र को पुष्पदन्त नामवाले गन्धर्वश्रेष्ठ ने बड़े-बड़े (शिखरिणी इत्यादि) छन्दों में रचा है। यहाँ **सकलगणवरिष्ठः** के स्थान पर **सकलगुणवरिष्ठः** पाठभेद भी देखा जाता है। इस दूसरे पाठभेद का अर्थ होगा - सभी गुणों से सम्पन्न। यहाँ पर एक बात विशेष ध्यान देने की है कि यहाँ **असुरसुरमुनीन्द्रैः** ..., में असुर शब्द पहले आया है, इसका तात्पर्य यह है कि सुर लोगों की अपेक्षा असुर लोग विशेषकर महादेव के भक्त हुए हैं। विभीषणादि एक-दो को छोड़कर असुर प्रायः कट्टर शैव हुए हैं।

एक बात और गौर करने योग्य है - असुर-सुर-मुनीन्द्र से क्रमशः पाताल, स्वर्ग और पृथ्वी लोक में रहनेवालों का भाव है। लिङ्गपुराणानुसार भगवान् शिव के चरणों की पाताल में, मस्तक की स्वर्ग में, और लिङ्ग की पृथ्वीलोक में पूजा होती है।

****

इस शिवमहिम्नस्तोत्र के नित्यपाठ से क्या फल मिलता है? इसका कथन करते हैं :-

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथात्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च॥३५॥

अन्वयार्थ : **धूर्जटेः** = विशालजटाधारी भगवान् शंकर के, **एतत्** = इस, **अनवद्यम्** = दोषरहित पवित्र, **स्तोत्रम्** = स्तोत्र को, **शुद्धचित्तः** = शुद्धचित्त होकर, **परमभक्त्या** = उत्कृष्ट भक्ति से, **यः**

पुमान् = जो मनुष्य, **अहः अहः** = प्रतिदिन, **पठति** = पढ़ता है, **सः** = **वह**, **अत्र** = इस लोक में, **प्रचुरतरधनायुः** = अत्यधिक धनी और दीर्घायु, **पुत्रवान्** = पुत्रादि कुटुम्बवाला, **च** = और, **कीर्तिमान्** = यशस्वी, **तथा** = और (देहत्याग के पश्चात्) **शिवलोके** = शिवलोक में, **रुद्रतुल्यः** = भगवान् शिव के समान महिमान्वित, **भवति** = होता है।

भावार्थः

भगवान् शिव का एक नाम धूर्जटि भी है। विशाल जटाओं को धारण करनेवाले हैं, इसलिए धूर्जटि कहते हैं। धूर्जटि (शंकर) के इस निर्दोष स्तोत्र का शुद्धान्तःकरण, एकाग्रचित्तवाला होकर अनन्य भक्ति से जो मनुष्य आलस्य को त्यागकर नियमितरूप से पाठ करता है, वह महादेव की कृपा से इस पृथ्वीलोक में या तो राजा अथवा राजा के समान ऐश्वर्यवाला, निरोग रहते हुए दीर्घायु तथा पुत्रवान् होता है और उसकी कीर्ति जगत् में चारों ओर फैल जाती है। वह इस लोक में इच्छानुसार सुख भोगकर मरणोपरान्त रुद्र के समान पराक्रम और स्वरूपवाला होकर भगवान् शिव के कैलासलोक में रहेगा।

यहाँ पर इस स्तोत्र को निर्दोष स्तोत्र कहा है क्योंकि इसके रचयिता शिव के अनन्य भक्त हैं। अहंकारशून्य होकर, बड़ी ही भक्ति द्वारा, अतिशयोक्ति से बचते हुए भावमय वातावरण में उन्होंने इस स्तोत्र की रचना की है। ऊपर फल बताया है कि पाठ करनेवाला वह साधक मरणोपरान्त शिवलोक में रहेगा।

भक्ति के तारतम्य के आधार पर उपासकों को चार प्रकार की मुक्ति मिलती है : पहली **'सालोक्य- मुक्ति'**, जिसमें उपासक अपने इष्ट-देवता के लोक में वास करता है। दूसरी **'सारूप्य-मुक्ति'**, जिसमें उपासक इष्ट-देवता के लोक में उस देवता के समानरूपवाला, ऐश्वर्यवान् होकर रहता है। तीसरी **'सामीप्य-मुक्ति'**, इसमें उपासक इष्ट-देवता के समीप में ही पार्षद आदि होकर रहता है। चौथी **'सायुज्य-मुक्ति'**, इसमें उपासक अपने इष्ट के साथ

अभिन्न हो जाता है, उन्हीं के स्वरूप को प्राप्त होता है। यहाँ भेद नहीं रहता है।

******

इस स्तोत्र के नित्यपाठ करने का फल बताकर अब कहते हैं कि और क्या प्रशंसा की जाए, संसार के सम्पूर्ण सत्कर्मों का फल भी इसके समक्ष न्यून ही है।

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः।
महिम्नःस्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥३६॥

अन्वयार्थ : **दीक्षा** = मन्त्रादि की दीक्षा लेना, **दानम्** = दान देना, **तपः तीर्थम्** = तपस्या और तीर्थदर्शन करना, **ज्ञानम्** = शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करना, **यागादिकाः क्रियाः** = यज्ञ इत्यादि सम्पूर्ण क्रियाएँ, **महिम्नःस्तवपाठस्य** = इस 'महिम्नस्तोत्रपाठ' की, **षोडशीम्** = सोलहवीं, **कलाम्** = कला के भी, **न अर्हन्ति** = बराबर (योग्य) नहीं हैं।

भावार्थः

शास्त्र में दीक्षा का बड़ा महत्व बताया है, कहते हैं - अदीक्षित के घर का अन्न आदि कोई वस्तु ग्रहण नहीं करना चाहिए, उसके साथ सम्भाषण भी निषेध है। कोई भी मन्त्रानुष्ठान, व्रतादि करने के पहले दीक्षा लेना अनिवार्य है। ऐसी दीक्षा, स्वर्ण इत्यादि का योग्य अधिकारी को दिया गया दान, अश्वमेध आदि बड़े-बड़े याग-कर्म, कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि बाह्य तप और मनोनिग्रह इत्यादि आन्तरिक तप ये सभी इस **महिम्नःस्तोत्र** के भक्तिपूर्वक किए हुए नित्यपाठ की सोलहवीं कला (एक अंश) के तुल्य भी नहीं हैं।

****

महिम्नःस्तोत्र की पुनः प्रशंसा करते हुए कहते हैं :-

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम्।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम्।।३७।।

अन्वयार्थ : गन्धर्वभाषितम् = पुष्पदन्त गन्धर्व द्वारा कहा गया, **इदम्** = यह, **पुण्यम् स्तोत्रम्** = पुण्यमय स्तोत्र, **आसमाप्तम्** = प्रारम्भ से लेकर समाप्ति पर्यन्त, **अनौपम्यम्** = अनुपम, **शिवम्** = कल्याणस्वरूप, **मनोहारि** = मनोहर, **ईश्वर-वर्णनम्** = ईश्वरतत्त्व का वर्णन करनेवाला है।

भावार्थः

पुष्पदन्तजी के द्वारा रचित यह **महिम्नःस्तोत्र** आरम्भ से लेकर अन्त तक भगवान् शिव के गुणगान से परिपूर्ण है। भगवान् शिव का एक नाम भी करोड़ों पापों को हरनेवाला कहा गया है, तो गुणगान से भरा यह स्तोत्र कितना पुण्यमय होगा, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। यह स्तोत्र अपने आपमें अद्वितीय होने से किसी के साथ उपमा करने योग्य नहीं है। कल्याणमूर्ति भगवान् शिव का महिमागान होने से इसका कल्याणस्वरूप होना स्वाभाविक ही है। इस स्तोत्र में शिखरिणी आदि छन्दों के द्वारा गान करते हुए अत्यन्त गूढ़ शिवतत्त्व का वर्णन किया गया होने से यह पढ़ने और सुननेवालों के मन को आकर्षित करता है। अतः इसे मनोहारी कहा है। निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार, सगुण-साकार आदि विग्रहों सहित परमात्मतत्त्व का इस स्तोत्र में भली-भाँति वर्णन किया गया है।

******

इस स्तोत्र को अनौपम्य कहकर अब भगवान् शिव की और उनसे सम्बन्धित मन्त्र इत्यादि की सर्वोत्कृष्टता कह रहे हैं :-

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्।।३८।।

अन्वयार्थ : **महेशात्** = शिव से बढ़कर, **अपरः** = दूसरा, **देवः न** = देवता नहीं है, **महिम्नः** = महिम्नःस्तोत्र से बढ़कर, **अपरा** = दूसरी, **स्तुतिः न** = स्तुति नहीं है, **अघोरात्** = अघोर मन्त्र से बढ़कर, **अपरः** = अन्य, **मन्त्रः न** = मन्त्र नहीं है, **गुरोः परम्** = गुरु से बढ़कर अन्य, **तत्त्वम् न अस्ति** = तत्त्व नहीं है।

भावार्थः

जितने भी देव हैं सभी भगवान् शिव के अंशरूप हैं। अंश कभी-भी अंशी से बड़ा नहीं हो सकता है, अर्थात् सभी देवताओं से बढ़कर भगवान् शिव ही हैं। जब भगवान् शिव से बढ़कर कोई देवता नहीं, तो शिवमहिमागान से बढ़कर और क्या स्तुति हो सकती है? अर्थात् कोई भी स्तोत्र इस महिम्नःस्तोत्र से बढ़कर नहीं है। अघोरमन्त्र से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है। अघोर मन्त्र का तात्पर्य यहाँ पञ्चाक्षर मन्त्र या प्रणव मन्त्र से है। वैसे भी भगवान् शिव का एक नाम अघोर (शान्त) है, अर्थात् शिव सम्बन्धी किसी भी मन्त्र को अघोर मन्त्र कह सकते हैं। गुरुतत्त्व से बढ़कर कोई अन्य तत्त्व नहीं है।

न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।
शिवशासनतः शिवशासनतः शिवशासनतः शिवशासनतः।।
(गुरुगीता १०८)

स्वयं भगवान् शिवजी ने भी गुरुगीता में कहा है - गुरुतत्त्व से बढ़कर कोई तत्त्व नहीं है।

******

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शिशुशशिधरमौलेर्देवदेवस्य दासः।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः।।३९।।

अन्वयार्थः शिशुशशिधरमौलेः = चन्द्रकला को मस्तक में धारण करनेवाले, **देवदवस्य** = देवों के भी देव महादेव का, **दासः** = सेवक, **कुसुमदशननामा** = पुष्पदन्त नामक, **सर्वगन्धर्वराजः** = समस्त गन्धर्वों का राजा था, **स खलु** = उसने, **अस्य रोषाद् एव** = भगवान् शिव के कोप से ही, **निजमहिम्नः** = अपने महत्व से, **भ्रष्टः** = पतित होकर, **इदम्** = इस, **दिव्यदिव्यम्** = दिव्यातिदिव्य, **महिम्नःस्तवनम्** = शिवमहिमारूप स्तोत्र को, **अकार्षीत्** = बनाया था।

भावार्थः

द्वितीया के चन्द्रमा को अपने जटाजूट में धारण करनेवाले, देवताओं के भी आराध्य देव महादेव के अनन्य भक्त, सभी गन्धर्वों के राजा (गन्धर्व एक देवजाति विशेष है, जो देवताओं में गायक होते हैं) पुष्पदन्त ने, शिव-निर्माल्य के उल्लंघन के फलस्वरूप महादेव के कोप से अपनी अदृश्य होने इत्यादि

सिद्धियों से वंचित होकर पुनः महादेव को प्रसन्न करने के लिए भावमय होकर इस परमोत्तम शिवमहिम्नःस्तोत्र की रचना की।

****

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम्।।४०।।

अन्वयार्थः **सुरवरमुनिपूज्यम्** = श्रेष्ठ देवताओं और मुनियों से पूजनीय (प्रशंसनीय), **स्वर्गमोक्षैकहेतुम्** = स्वर्ग और मोक्ष का प्रमुख कारण, **पुष्पदन्तप्रणीतम्** = पुष्पदन्ताचार्य द्वारा रचित, **इदम्** = इस, **अमोघम् स्तवनम्** = अवश्य ही फल देनेवाले स्तोत्र को, **यदि मनुष्यः** = यदि कोई मनुष्य, **प्राञ्जलिः** = दोनों हाथों को जोड़कर, **नान्यचेताः** = एकाग्रचित्त होकर, **पठति** = पढ़ता है, (तो) **किन्नरैः** = किन्नरों द्वारा, **स्तूयमानः** = स्तुति किया जाता हुआ, **शिवसमीपम्** = शिवजी के समीप, **व्रजति** = जाता है।

भावार्थः

इन्द्रादि देववरिष्ठों और वसिष्ठादि मुनिश्रेष्ठों के द्वारा भी प्रशंसित, स्वर्ग और मोक्ष का द्वार खोलने के एकमात्र साधन, श्रीपुष्पदन्ताचार्य के द्वारा विरचित, कभी व्यर्थ न जानेवाले (अवश्य ही फल देनेवाले) इस स्तोत्र का यदि कोई मनुष्य (यहाँ मनुष्य उपलक्षण है अर्थात् देव, असुर कोई भी) दोनों हाथों

को जोड़कर भगवान् शिव के सिवाय अन्य किसी में मन न लगाता हुआ नित्यपाठ करता है, तो देहत्याग के पश्चात् निश्चय ही किन्नरों (देवविशेष) के द्वारा स्तुति किया जाता हुआ भगवान् शिव के सामीप्य (परमपद) को प्राप्त कर लेता है

******

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः।।४१।।

अन्वयार्थः श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन = श्रीपुष्पदन्ताचार्य के मुखकमल से निकले हुए, **हरप्रियेण** = भगवान् महादेव के अत्यन्त प्रिय, **किल्बिषहरेण** = पापनाशक, **कण्ठस्थितेन** = कण्ठस्थ किए हुए, **स्तोत्रेण** = स्तोत्र के, **समाहितेन** = एकाग्रचित्त हो, **पठितेन** = पाठ करने से, **भूतपतिः महेशः** = समस्त भूतों के अधिपति भगवान् शंकर, **सुप्रीणितः भवति** = अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।

भावार्थ :

श्रीपुष्पदन्ताचार्यजी के मुखारविन्द से निकले हुए, त्रिविध (कायिक, वाचिक, मानसिक) पापसमूह को समूल नष्ट करनेवाले, भगवान् शिव के

अत्यन्त प्रिय इस महिम्नः स्तोत्र को कण्ठस्थ करके एकाग्रचित्त होकर नित्यपाठ करने से समस्त भूताधिपति भगवान् शंकर उस साधक पर अत्यन्त प्रसन्न होकर उसको मनोभिलषित फल प्रदान करते हैं।

****

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः॥४२॥

अन्वयार्थः इति एषा = इस प्रकार यह, **वाङ्मयी पूजा** = शब्दमयी भेंट, **श्रीमच्छङ्करपादयोः** = श्रीमान् शंकर भगवान् के चरणों में, **अर्पिता** = अर्पण की, **तेन** = उस कारण से, **देवेशः** = देवाधिपति, **सदाशिवः** = सर्वदा कल्याणस्वरूप महादेव, **मे प्रीयताम्** = मुझपर प्रसन्न होवें।

भावार्थः

इस प्रकार उपरोक्त महिम्नःस्तोत्रपाठरूपी शब्दमयी पूजा (पुष्पाञ्जलि) श्रीमान् शंकर भगवान् के पादपङ्कजों में मैंने अर्पण की। इस अर्पण के फलस्वरूप देवाधिदेव सर्वदा कल्याणमूर्ति भगवान् शिव मुझपर भी पुष्पदन्ताचार्य के समान प्रसन्न होवें और कल्याण प्रदान करें।

****

यदक्षरं पदंभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत्।

तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर।।४३।।

अन्वयार्थः देव! = हे देव! **यद्-अक्षरम्** = जो अक्षर, **च पदम्** = और पद का, **भ्रष्टम् मात्राहीनम् भवेत्** = अशुद्ध (अस्पष्ट) उच्चारण और मात्रा की गलती हुई हो, (तो) **परमेश्वर!** = हे परमेश्वर! **तत्** = वह, **सर्वम्** = सब, **क्षम्यताम्** = क्षमा करें, (और) **प्रसीद** = आप (मुझपर) प्रसन्न होवें।

भावार्थः

हे दिव्यस्वरूप महादेव! इस स्तोत्रपाठ के समय मुझसे प्रमादवश जो अक्षर या पद उच्चारण में त्रुटि हुई हो, तो हे परमेश्वर! आप मुझे अल्पज्ञ समझकर क्षमा करें और मेरी कमियों की उपेक्षा करते हुए मुझपर प्रसन्न होवें।

****

ॐ महादेव शिव शंकर शम्भो उमाकान्त हर त्रिपुरारे
मृत्युञ्जय वृषभध्वज शूलिन् गङ्गाधर मृड मदनारे
हर शिव शंकर गौरीशं वन्दे गङ्गाधरमीशम्
रुद्रं पशुपतिमीशानं कलये काशीपुरिनाथम्
ॐ जय शम्भो जय शम्भो शिवगौरीशंकर जय शम्भो।।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

अन्वयार्थ : अदः = वह निरुपाधिक परब्रह्म, **पूर्णम्** =

आकाश के समान सर्वव्यापी एवं एकरस है, **इदम्** = यह नामरूपादि उपाधिविशिष्ट जीव भी, **पूर्णम्** = अपने स्वरूप से सर्वव्यापी तथा एकरस है, **पूर्णात्** = तत्पदवाच्य व्यापक कारणब्रह्म से, **पूर्णम्** = त्वंपदवाच्य जीव, **उदच्यते** = (महाकाश से घटाकाश के समान) उत्पन्न होता है, (यद्यपि कार्यरूप से उत्पन्न होता है, परन्तु अपने पूर्णत्व स्वभाव को नहीं छोड़ता), **पूर्णस्य** = त्वंपदवाच्य जीव की, **पूर्णम् आदाय** = पूर्णता को लेकर अर्थात् एकत्व ज्ञान के द्वारा अज्ञानकृत जीवब्रह्म की भेदप्रतीति का निरास कर देने पर, **पूर्णम् एव** = सम्पूर्ण भेदों से रहित, अद्वितीय, प्रज्ञानघन ब्रह्म ही, **अवशिष्यते** = शेष रह जाता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

अर्थ :- आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक त्रिविध तापों की शान्ति हो।

****

ॐ नमः शिवाय

शिवोपासनाविषयक शंका-समाधान

प्रत्येक प्राणी की एक ही कामना है कि मेरे अशेष क्लेशों की निवृत्ति हो एवं परमानन्द की प्राप्ति हो। इस अभीष्ट की प्राप्ति के लिए शास्त्रों में अनेक क्रमिक साधन बताए गए हैं, जिनमें निष्काम-कर्म, भक्ति (उपासना) एवं ज्ञान मुख्य हैं। इन तीनों साधनों का वर्णन करने के कारण वेद में भी कर्म, उपासना एवं ज्ञान नाम से तीन काण्ड माने गए हैं।

निष्काम-कर्म, उपासना एवं ज्ञान से क्रमशः मल, विक्षेप एवं आवरणरूपी दोषों की निवृत्ति होती है जिससे जीव अपने वास्तविक शिवस्वरूप को प्राप्त कर लेता है, इसे ही मुक्ति कहते हैं - **'मुक्तिर्हित्वाऽन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः।'** स्वरूपस्थिति को ही मोक्ष कहते हैं।

इन तीन साधनों में **उपासना** नामक साधन महत्वपूर्ण होते हुए भी सभी के लिए सरल पड़ता है। उपासना का उत्कृष्ट रूप भक्ति है, जो भावप्रधान है। इसमें कर्म तथा ज्ञान के समान उतनी जटिलता नहीं है। वैसे सभी साधन कठिन ही हैं, उपासना में भी यत्न एवं सावधानी अपेक्षित है ही।

उपासना शब्द का साधारण अर्थ होता है - अपने इष्टदेव के समीप बैठना। अर्थात् अपने इष्टदेव से भिन्न वस्तुओं को मन से हटाते हुए केवल इष्टाकार मनोवृत्ति को धाराप्रवाह चलाना ही उपासना है। **'विजातीयप्रत्ययानन्तरित-सजातीयवृत्तिप्रवाह उपासनमिति'**अथवा **'गुणचिन्तनं उपासनम्।'** उपास्य के अभीष्ट गुणों के चिन्तन को उपासना कहते हैं।

उपासना के शास्त्रो में कई भेद बताए गए हैं - जैसे, अहंग्रहोपासना,

प्रतीकोपासना एवं अंगोपासना आदि। पुनः सम्पद्, अध्यास आदि भी उपासना के प्रकार कहे गए हैं। आरोप्यप्रधान उपासना को सम्पद् एवं आलम्बनप्रधान उपासना को अध्यास कहा जाता है। आलम्बनप्रधान उपासना ही प्रतीकोपासना है - **आलम्बनप्रधानः प्रतीकः।**

प्रतीकोपासना (प्रतीक) में विभिन्न आलम्बन होते हैं - जैसे, विष्णु-उपासना में शालिग्राम, चतुर्भुजमूर्ति एवं शिव-उपासना में बाणलिङ्ग, शिवमूर्ति तथा शक्ति-उपासना में यन्त्र, देवीमूर्ति आदि आलम्बन होते हैं। आलम्बन को ही प्रतीक कहते हैं। प्रतीक के माध्यम से परतत्त्व की ही उपासना होती है, इसलिए इसे प्रतीकोपासना कहते हैं।

लिङ्ग शब्दार्थ में भ्रान्ति

शिव की उपासना (पूजा) मूर्ति की अपेक्षा लिङ्ग में विशिष्ट मानी जाती है। लोक में भी शिवलिङ्ग-पूजा का प्रचलन अधिक है, पर पूर्ण शास्त्रीय ज्ञान न होने से सामान्य लोगों में लिङ्ग शब्द के अर्थ में बहुत-सी भ्रान्तियाँ हैं। एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। कहाँ कौन-सा अर्थ लिया जाए, इसमें विचार करके निर्णय करना पड़ता है। प्रसंगानुसार अनेक अर्थों में से जो उपयुक्त अर्थ होता है उसे ही लिया जाता है। लिङ्ग शब्द के भी अनेक अर्थ होते हैं।

लिङ्गं चिह्नेऽनुमाने च सांख्योक्तप्रकृतावपि।
शिवमूर्तिविशेषे च मेहनेऽपि नपुंसकम्।।

मेदिनी कोश के अनुसार लिङ्ग शब्द के अर्थ - चिह्न, अनुमान (हेतु), सांख्योक्त प्रकृति, शिव की मूर्तिविशेष (बाणलिङ्गादि) एवं पुरुष की जननेन्द्रिय होते हैं। इन सभी अर्थों में लिङ्ग शब्द नपुसंक ही होता है। पूर्वापर का विचार

किए बिना कुछ लोग दुराग्रहवश शिवलिङ्ग का अर्थ शिव की जननेन्द्रिय करके साधारण लोगों में भ्रान्ति पैदा कर देते हैं, जो सर्वथा अनर्थ है।

प्रश्न होता है कि शिवलिङ्ग में लिङ्ग शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है? शास्त्रीय दृष्टि से पूर्वापर विचार करने पर **शिवलिङ्ग में लिङ्ग शब्द का अर्थ शिव का चिह्न (प्रतीक) ही होता है।** अर्थात् यह लिङ्ग चिह्न जैसे निराकार है, वैसे ही शिव भी निराकार हैं या जैसे विश्व गोलाकार है, वैसे ही शिव का यह चिह्न भी गोलाकार होने से विश्वरूप है। यहाँ शिव का लिङ्ग, ऐसा षष्ठीतत्पुरुष समास न करके **शिवात्मक लिङ्ग** - यह अर्थ कर्मधारय समास करके ग्रहण करना चाहिए। शिव ही लिङ्ग हैं, इस बात में अनेक शास्त्रवाक्य प्रमाण हैं –

शिव एव स्वयं लिङ्गं लिङ्गं गमकमेव हि। (सूतसंहिता)

सूक्ष्मत्वात् कारणत्वाच्च लयनाद्गमनादपि।
लक्षणात् परमेशस्य लिङ्गमित्यभिधीयते।।
(योगशिखोपनिषद्-१०३)

अर्थात् शिव कारण हैं, शिव की जगत्कारणता तो शास्त्र में प्रतिपादित ही है। **कारणत्वाद् लिङ्गम्**, इसलिए लिङ्गोपासना को कारणोपासना भी कहा जाता है। लिङ्ग शब्द का अर्थ न्यायादिक शास्त्रों में ज्ञापक-हेतु अर्थ में भी प्रयुक्त होता है - जैसे, धूम अग्नि का ज्ञापक हेतु है, वैसे ही शिव का लिङ्गस्वरूप जगत् के अधिष्ठानरूप ब्रह्मतत्त्व का बोधक है - **लीनमर्थं गमयतीति लिङ्गम्।** यह सारा विश्व अन्त में शिव में लीन होता है। शिव ही लय का स्थान होने से लिङ्गस्वरूप हैं -

आलयः सर्वभूतानां लयनाल्लिङ्गमुच्यते।।

अर्थ : शिव ही जीवों के निवासस्थान हैं तथा अन्त में सभी जीव शिव में ही लीन होते हैं। इसी कारण से शिव को लिङ्ग कहते हैं।

शिवो हि द्विविधः प्रोक्तो निष्कलः सकलस्तथा।
निष्कलत्वान्निराकारं लिङ्गं तस्य सुसङ्गतम्।।

अर्थ : शिव के दो स्वरूप हैं - एक तो निरवयव (निराकार) और दूसरा सावयव (साकार)। निरवयव होने से उनके निराकार स्वरूप को लिङ्ग कहना समीचीन ही है।

लिङ्ग शब्द की उपर्युक्त व्युत्पत्ति करने पर शिवलिङ्ग का अश्लील अर्थ होता ही नहीं है। शिवलिङ्ग का तात्पर्यार्थ शास्त्रीय विचार से यही सिद्ध होता है कि शिव का लिङ्गस्वरूप जगत्कारण है।

अतः जिज्ञासुजनों को शास्त्रीय विचार एवं गुरुजनों से श्रवण करके शिवलिङ्ग के यथार्थ को समझकर श्रद्धा-भक्ति से शिवोपासना करनी चाहिए। पूजा भी उपासना का एक प्रकार है जिसे अधिकारानुसार सभी कर सकते हैं। पूजा के परा, मानसी, वाङ्मयी, कायिकी, द्रव्यमयी, भावमयी आदि कई भेद होते हैं। राजोपचार, षोडशोपचार, पञ्चोपचार आदि कई प्रकार की पूजा के भेद शास्त्रों में वर्णित हैं। यहाँ इन सभी बातों की चर्चा नहीं करनी है। केवल उन्हीं विषयों की चर्चा करनी है जिनमें लोगों की शास्त्र के विपरीत धारणाएँ अथवा शंकाएँ हैं। इनमें कुछ शंकाएँ निम्नांकित हैं -

शंका १

लिङ्गपूजन शास्त्रीय है अथवा नहीं ?

समाधान

कुछ शास्त्रीयज्ञानशून्य लोग दुराग्रहवश शिवलिङ्गपूजन को ही

अशास्त्रीय बताते हैं। इस शंका के समाधान के लिए कुछ शास्त्रवचनों का अवलोकन करते हैं।

यतो नमःशिवायेति ह्येतावत् परमं पदम्।
अनेन पूजयेल्लिङ्गं लिङ्गे यस्मात् स्थितः शिवः।। (अग्निपुराण)

अर्थ :- महादेव बोले, **'नमः शिवाय'** यह मन्त्र ही परमपद है। इसी मन्त्र से शिवलिङ्गपूजन करें क्योंकि लिङ्ग में ही शिव का निवास है।

अनुग्रहाय लोकानां धर्मकामार्थमुक्तिदम्।
यो न पूजयते लिङ्गं न स धर्मादिभाजनम्।। (अग्निपुराण)

अर्थः- जीवों पर अनुग्रह करने के लिए भगवान् शिव धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थप्रदायक लिङ्गरूप से स्थित हैं, ऐसे लिङ्ग की जो पूजा नहीं करता वह धर्मादि पुरुषार्थों को प्राप्त नहीं कर सकता।

लिङ्गार्चनाद् भुक्तिमुक्तिर्यावज्जीवगतो यजेत्।
वरं प्राणपरित्यागो भुञ्जीतापूज्य नैव तम्।। (अग्निपुराण)

अर्थ :- लिङ्गपूजन से ही भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है। अतः जीवनपर्यन्त लिङ्गपूजन करना चाहिए। भोजन बिना प्राणत्याग भी श्रेष्ठ है, परन्तु लिङ्गपूजन के बगैर भोजन नहीं करना चाहिए।

सर्वभूतभवं ज्ञात्वा लिङ्गमर्चयते प्रभोः।
तस्मिन्नभ्यधिकां प्रीतिं करोति वृषभध्वजः।।

(महा., द्रोण. - २०.२.२७)

अर्थ :- शिवलिङ्ग को सम्पूर्ण प्राणियों का कारण समझकर जो उसका पूजन करता है, उसपर भगवान् वृषभध्वज (शिव) अत्यधिक प्रेम करते हैं।

उपरोक्त शास्त्रोक्तियों पर विचार करने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि कल्याणकामी प्राणीमात्र के लिए शिवलिङ्गपूजन अत्यावश्यक है क्योंकि इन वचनों के द्वारा लिङ्गपूजन का विधान और लिङ्गपूजन न करने की निन्दा की गयी है।

शंका - २

शिवजी को तुलसी चढ़ानी चाहिए या नहीं?

समाधान -

शास्त्रीय-विचारशून्य साधारण लोगों में यह धारणा बनी हुई है कि तुलसी शिवजी को नहीं चढ़ानी चाहिए। पर यह धारणा शास्त्रमूलक न होने से निर्मूल, अप्रामाणिक एवं भ्रान्त है, तुलसीदल से शिवपूजन की विधि में शास्त्रवचन प्रमाण हैं -

तुलसीदलमात्रेण यः करोति शिवार्चनम्।
कुलैकविंशमुद्धृत्य शिवलोके महीयते।।

अर्थ : केवल तुलसीदल से भी जो शिवार्चन करता है, वह अपनी २१ पीढ़ियों को तार करके स्वयं शिवलोक में महिमान्वित होता है।

तुलसीमञ्जरीभिर्यः कुर्याद् हरिहरार्चनम्।
न स गर्भगृहं याति मुक्त एव न संशयः।।

अर्थ : तुलसीमञ्जरी से जो हरि एवं हर का पूजन करता है, वह पुनः माता के गर्भ में नहीं आता है, मुक्त हो ही जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। इन दोनों श्लोकों से सिद्ध होता है कि तुलसी शिवजी को चढ़ाना शास्त्रविहित है।

शंका - ३

शिवलिङ्गपूजन में स्त्रियों का अधिकार है या नहीं है?

समाधान -

इस शंका का समाधान भी स्मृति-पुराणों के वचनों एवं सदाचार से हो जाता है। शास्त्र में अनेकों वचन स्त्रियों का शिवलिङ्गपूजन में अधिकार सिद्ध करते हैं। स्त्रियों के शिवपूजनविषयक अधिकार को सिद्ध करनेवाले कुछ शास्त्रवचन इस प्रकार हैं -

पुरा तु मृन्मयं लिङ्गमर्च्य लक्ष्मीः प्रयत्नतः।
जाता सौभाग्यसम्पन्ना महादेवप्रसादतः।।

अर्थ :- पूर्वकाल में लक्ष्मीजी पार्थिव शिवलिङ्ग की पूजा करके महादेव की कृपा से सौभाग्यवती हुईं।

प्रसवो जायते यस्यास्तया तु शिवपूजनम्।
कर्तव्यं मानसं नित्यं दशाहान्तं प्रयत्नतः।।

अर्थ :- जिस शिवभक्तस्त्री को प्रसव हुआ हो, उसे १० दिन तक शिव का मानसपूजन करना चाहिए।

दशाहे समतीते तु कृत्वा स्नानं यथाविधि।
शिवलिङ्गार्चनं कार्यं द्विजस्त्रिभिर्द्विजैरिव।।

अर्थ :- प्रसव के दस दिन के बाद स्नानादि से शुद्ध होकर शिवलिङ्ग का पूजन द्विजस्त्री को द्विजों के समान ही करना चाहिए।

इन वचनों (प्रमाणों) से यही सिद्ध होता है कि द्विज-स्त्रियों को शुद्ध (मासिक एवं प्रसव से भिन्न) अवस्था में पूजन करना चाहिए। शिवपूजन में सभी वर्णों एवं आश्रमों का अधिकार शास्त्रसिद्ध है। पूर्वोक्त दो श्लोक सभी स्त्रियों का शिवपूजन में अधिकार सिद्ध करते हैं।

शिष्टों के आचरण पर दृष्टिपात करने से भी यह ज्ञात होता है कि पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी शिवलिङ्ग-पूजन करती रही हैं। इन्दौर की महारानी पुण्यश्लोक अहिल्याबाई सदा शिवार्चन करती थीं और शिवलिङ्ग को हाथ में रखकर ही न्याय (विवाद का निर्णय) भी करती थीं, शिवादेश सुनाती थीं।

शंका - ४

शिवनैवेद्य ग्राह्य है अथवा नहीं?

एक बड़ी भ्रान्ति **'शिवनैवेद्य-भक्षण'** के विषय में है कि 'शिवनैवेद्य 'निर्माल्य' होता है, इसलिए उसे नहीं खाना चाहिए। इसमें प्रमाण भी दिये जाते हैं कि शिवनैवेद्य अग्राह्य है।

अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्। (शिवपु.-१.२२.१९)
अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
मह्यं निवेद्य सकलं कूप एव विनिःक्षिपेत्।। (पद्मपुराणे शिवोक्तिः)

विसर्जितस्य देवस्य गन्धपुष्पनिवेदनम्।
निर्माल्यं तद्विजानीयाद् वर्ज्यं वस्त्रविभूषणम्।
अर्पयित्वा तु ते भूयश्चण्डेशाय निवेदयेत्।।(स्कन्दपुराणे)

धराहिरण्यगोरत्नताम्ररौप्यांशुकादिकान्।
विहाय शेषं निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत्।।

उपर्युक्त वाक्यों का भावार्थ है कि शिवलिङ्ग में समर्पित पत्र, पुष्प, फल, जल एवं नैवेद्य अग्राह्य है, केवल भूमि, वस्त्र, आभूषण, सोना-चाँदी, ताम्बा आदि को छोड़कर सभी फल-जलादि निर्माल्य हैं, उसे कुँए में डाल देना चाहिए। शिवनिर्माल्य में चण्डेश का अधिकार है, अतः चण्डेश को निवेदित कर देवें। इस प्रकार कुछ वाक्यों से स्थानविशेष में शिवलिङ्ग पर चढ़ी हुई वस्तु (फल, जल, नैवेद्य आदि) के निषेध को भ्रान्त लोग सर्वत्र लागू करने लगते हैं और स्वयंभू आदि सभी लिङ्गों में चढ़े पत्र, पुष्प, फल-जल, नैवेद्य को भी अग्राह्य कहकर, श्रद्धालु जनों को भ्रान्ति में डाल देते हैं।

समाधान -

विधि-निषेध की एक शास्त्रीय व्यवस्था होती है। विधि-निषेध देश, काल, परिस्थिति के अनुसार व्यक्तिविशेष के लिए होते हैं, क्योंकि वर्ण, आश्रम आदि के अनुसार कोई कर्म एक के लिए विहित होता है, तो वही कर्म दूसरे के लिए निषिद्ध होता है। सभी के लिए सब कर्म, धर्म नहीं होते हैं। गृहस्थ आश्रम में जो कर्म धर्म है, वही कर्म संन्यासाश्रम में अधर्म हो जाता है। इस तरह धर्म भी विशेष (कुछ व्यक्तियों के लिए) एवं सामान्य (सबके लिए) होते हैं।

शिवनिर्माल्य एवं शिवनैवेद्य की ग्राह्याग्राह्यता के विषय में भी व्यवस्था है, वह व्यवस्था इस प्रकार है :-

शिवदीक्षान्वितो भक्तो महाप्रसादसंज्ञकम्।
सर्वेषामपि लिङ्गानां नैवेद्यं भक्षयेच्छुभम्।।

जो लोग शिव-दीक्षा से युक्त हैं, उन्हें सभी लिङ्गों का नैवेद्य ग्रहण करना चाहिए, शिवमन्त्र से दीक्षित साधक-भक्तों के लिए **शिव-नैवेद्य महाप्रसाद है।**

इस विषय को अधिक जानना हो तो **शिवपुराण की विद्येश्वर-संहिता का २२वाँ अध्याय** देखना चाहिए, जहाँ शिवनैवेद्य-ग्रहण की प्रशंसा की गई है :-

दृष्ट्वाऽपि शिवनैवेद्यं यान्ति पापानि दूरतः।
भुक्ते तु शिवनैवेद्ये पुण्यान्यायान्ति कोटिशः।।

भावार्थ :- शिवनैवेद्य के दर्शनमात्र से ही सारे पाप दूर भाग जाते हैं तथा नैवेद्य भक्षण से करोड़ों पुण्य प्राप्त होते हैं।

अलं यागसहस्रेण ह्यलं यागार्बुदैरपि।
भक्षिते शिवनैवेद्ये शिवसायुज्यमाप्नुयात्।।

भावार्थ : हजारों अरबों याग करने की कोई अपेक्षा नहीं है। शिवनैवेद्य के भक्षण से ही शिवसायुज्य की प्राप्ति हो जाती है।

आगतं शिवनैवेद्यं गृहीत्वा शिरसामुदा।
भक्षणीयं प्रयत्नेन शिवस्मरणपूर्वकम्।।

भावार्थ : प्राप्त शिवनैवेद्य को भावपूर्वक सिर से स्पर्श करते हुए, शिवस्मरण करते हुए ग्रहण करना चाहिए।

न यस्य शिवनैवेद्यग्रहणेच्छा प्रजायते।
स पापिष्ठो गरिष्ठः स्यान्नरकं यात्यपि ध्रुवम्।।

भावार्थ :- जिसकी शिवनैवेद्य को ग्रहण करने की इच्छा नहीं होती, वह मनुष्य बड़ा पापी होता है और निश्चित ही नरकगामी होता है।

इस प्रथम व्यवस्था के अनुसार शिवभक्तों को अर्थात् शैवी-दीक्षावालों को सभी लिङ्गों के नैवेद्यों का भक्षण करना चाहिए, ऐसी विधि है।

अन्य देवों की दीक्षावालों के लिए व्यवस्था है कि वे स्वयम्भूलिङ्ग, बाणलिङ्ग आदि कुछ ही लिङ्गों का नैवेद्य लेवें या शालिग्राम के स्पर्शपूर्वक सभी लिङ्गों का नैवेद्य लेवें क्योंकि चण्डाधिकारवाले लिङ्गों के नैवेद्य-भक्षण में सभी लोगों का अधिकार नहीं है - **'चण्डाधिकारो यत्रास्ति तद्भुक्तव्यं न मानवैः'** - इस श्लोक में मानव शब्द का अर्थ संकुचित करके शिवभक्तों से भिन्न मानव, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए। ऐसा न करने पर (अर्थात् मानव पद से सभी मानवों का ग्रहण करने पर) अधोनिर्दिष्ट वचन से विरोध होगा :-

शिवदीक्षान्वितोभक्तो महाप्रसादसंज्ञकम्।
सर्वेषामपि लिङ्गानां नैवेद्यं भक्षयेच्छुभम्।।
(शिवपु.वि.सं.- २२.११)

इन वाक्यों से शैवी-दीक्षावालों को सभी शिवलिङ्गों को समर्पित नैवेद्य को महाप्रसाद समझकर अवश्य भक्षण करना चाहिए, ऐसा कहा गया है। अतः पूर्वोक्त चण्डाधिकारवाले श्लोक **'तद्भोक्तव्यं न मानवैः'** में मानव पद का अर्थ शैवी-दीक्षारहित मानव करना ही उचित है।

मदीयं भुक्तनिर्माल्यं पादाम्बुकुसुमं जलम्।
धर्ममर्थञ्च कामञ्च मोक्षञ्च ददते क्रमात्।। (स्कन्दपुराण)

अर्थः भगवान् शिव कहते हैं कि मुझे भोग लगाए हुए नैवेद्य, मेरे चरणोदक, पुष्प और जल को श्रद्धा से ग्रहण करनेवाले भक्त को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थ सहज ही प्राप्त हो जाते हैं।

अब प्रश्न होता है कि चण्डाधिकार कहाँ होता है और कहाँ नहीं होता है?

बाणलिङ्गे च लोहे च सिद्धलिङ्गे स्वयम्भुवि।
प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत्।।
(शिवपु. वि.सं.- २२.१७)

लिङ्गे स्वायम्भुवे बाणे रत्नजे रसनिर्मिते।
सिद्धप्रतिष्ठिते चैव न चण्डाधिकृतिर्भवेत्।। (निर्णयसिन्धु)

उपर्युक्त वाक्यों का तात्पर्य यही है कि बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर), धातुनिर्मित लिङ्ग, पारदलिङ्ग, स्वयम्भूलिङ्ग, द्वादशज्योतिर्लिङ्ग, सिद्ध महापुरुषों द्वारा प्रतिष्ठापित लिङ्ग तथा सभी प्रतिमाओं (मूर्तिविग्रहों) में चण्डाधिकार नहीं होता है। इनसे भिन्न साधारण लोगों द्वारा रचित मिट्टी, पत्थर के लिङ्गों में चण्डाधिकार होता है, उनपर चढ़े पत्र-पुष्प एवं नैवेद्य को शैवी-दीक्षारहित मानवों को शालग्राम से स्पर्श कराए बिना ग्रहण नहीं करना चाहिए अथवा सभी शिवनैवेद्य सभी के लिए ग्राह्य हो सकता है, यदि वह लिङ्ग के ऊपर न चढ़ाया गया हो, अपितु सामने रखकर भोग लगाया गया हो।

लिङ्गोपरि च यद्द्रव्यं तदग्राह्यं मुनीश्वराः।
सुपवित्रं च तज्ज्ञेयं यल्लिङ्गस्पर्शबाह्यतः।।

इन शास्त्रवाक्यों से यही सिद्ध होता है कि जो व्यक्ति पूर्वापर का विशेष विचार किए बिना सामान्यतः शिवनैवेद्य-भक्षण का निषेध करता है, वह स्वयं तो पाप का भागी होता ही है, औरों को भी पाप का भागी बनाता है क्योंकि शास्त्रों में शिवप्रसाद ग्रहण करने की विधि है। विहित का अनुष्ठान न करने से पाप होता है, पाप का फल दुःख एवं नरक होता है। अतः श्रद्धालु जनों को शिवार्पित-द्रव्य को प्रसादरूप में अवश्य ग्रहण करना चाहिए अन्यथा बहुत बड़ा अपराध हो जाएगा

न यस्य शिवनैवेद्यग्रहणेच्छा प्रजायते।
स पापिष्ठो गरिष्ठः स्यान्नरकं यात्यपि ध्रुवम्।।

शिवभक्तों के लिए शिवपूजन के बाद शिवनैवेद्य ग्रहण करना भी पूजा का उत्तराङ्ग ही है। शिवनैवेद्य न ग्रहण करने से पूजा सर्वाङ्गपूर्ण नहीं होती, अङ्गहीन (अधूरी) रह जाती है। अतः शिवभक्तों को शिवनैवेद्य अवश्य लेना चाहिए, अन्य देवों के भक्तों को भी बाणादिलिङ्गों, शिवप्रतिमाओं पर चढ़ाया गया तथा लिङ्ग को स्पर्श न कराके सामने चढ़ाया गया सभी लिङ्गों का प्रसाद अवश्य लेना चाहिए।

शंका ५

भस्म धारण करें अथवा नहीं ?

समाधान

भस्मधारण के विषय में भी कुछ सम्प्रदायवादी लोग अश्रद्धा उत्पन्न करते हैं। परन्तु उन्हें जाबाल आदि उपनिषदों को देखना चाहिए जिनमें भस्म, रुद्राक्ष आदि की महिमा का विशद रूप से वर्णन किया गया है -

तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्।
येन विप्रेण शिरसि त्रिपुण्ड्रं भस्मना धृतम्।।

(बृहज्जाबाल उप.-५.७)

अर्थ : जिस ब्राह्मण ने अपने मस्तक पर भस्म का त्रिपुण्ड्र धारण कर लिया, उसके द्वारा मानो सम्पूर्ण शास्त्रों का अध्ययन तथा श्रवण हो गया एवं सभी कर्तव्यकर्मों का अनुष्ठान भी हो गया। (भस्मधारण की ऐसी असीम महिमा है।)

त्यक्तवर्णाश्रमाचारो लुप्तसर्वक्रियोऽपि यः।
सकृत्तिर्यक्त्रिपुण्ड्राङ्कधारणात् सोऽपि पूज्यते।।

(बृहज्जाबाल उप.-५.८)

अर्थ :- अपने लिए विहित सम्पूर्ण वर्णाश्रम आचार का जिसने त्याग कर दिया है और विहित कर्मों का अनुष्ठान भी नहीं करता, ऐसा मनुष्य भी एक बार त्रिपुण्ड्र धारण कर लेने से सर्वपूज्य बन जाता है।

एतानि पञ्चशिवमन्त्रपवित्रितानि
भस्मानि कामदहनाङ्गविभूषितानि।
त्रैपुण्ड्रकानि रचितानि ललाटपट्टे
लुम्पन्ति दैवलिखितानि दुरक्षराणि।।
(देवीभागवत -११.१३.३५)

अर्थ :- सद्योजातादि पाँच शिवमन्त्रों से पवित्र तथा कामदाहक महादेव के अङ्गों में विभूषित तथा ललाट पर त्रिपुण्ड्ररूप में धारित यह भस्म ब्रह्मा के लिखे हुए दुर्भाग्य का भी नाश कर देती है।

शंका ६

विष्णुभक्त शिवपूजन करें अथवा नहीं ?

समाधान

कुछ शास्त्र-तात्पर्य से अनभिज्ञ मूढ़ लोग शिव और विष्णु में भेद करते हैं। यदि वे शैव हों, तो विष्णु की और वैष्णव हों तो शिव की निन्दा भी करते हैं। वस्तुतः शास्त्रदृष्टि से तो यह एक जघन्य अपराध है क्योंकि शास्त्रों में कई जगह शिव-विष्णु में अभेद का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है। शिवद्रोह अथवा विष्णुद्रोह की निन्दा भी की गई है। कुछ ऐसे शास्त्र-वचन यहाँ उद्धृत किए जाते हैं :-

ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहम्।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढा पश्यन्ति दुर्धियः।।
(पद्म. पाताल - २८.२१)

अर्थः- भगवान् राम शिवजी से कहते हैं आप तो मेरे हृदय में रहते हैं और मैं आपके हृदय में रहता हूँ। हमारे बीच तनिक भी भेद नहीं है जो दुर्बुद्धि मूर्ख लोग हैं, वे ही हम दोनों में भेद देखते हैं।

ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम्।।
(पद्म. पाताल - २८.२२)

अर्थः- हम दोनों वास्तव में एक रूप ही हैं। हममें जो मूढ़ मनुष्य भेद समझते हैं, वे कुम्भीपाक नरकों में हजारों कल्पपर्यन्त यातना के भागी होते हैं।

शिवाय विष्णुरूपाय शिवरूपाय विष्णवे।
शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः।। (स्कन्दोपनिषद्)

अर्थ :- शिव के हृदयस्वरूप तो विष्णु हैं और विष्णु के हृदयस्वरूप स्वयं शिव ही हैं। विष्णुस्वरूप भगवान् शिव को तथा शिवस्वरूप भगवान् विष्णु को हमारा नमस्कार है।

इन श्लोकों से स्पष्ट ही है कि विष्णु और शिव में तत्त्वतः किञ्चित्मात्र भी भेद नहीं है। यदि कोई दुर्भाग्यवश भेद मानता है और शिव या विष्णु की निन्दा करता है तो मानो वह अपने लिए साक्षात् नरक के द्वार ही खोलता है। अतः कल्याणकामी सज्जनों से निवेदन है कि न तो दोनों देवों में भेद समझें और न ही इनकी निन्दा करें।

शिवाराधन से लोक-परलोक दोनों सुधरते हैं :-

सुत-कलत्र जय-विजय विभूति शंकर सुमिरत होत अकूति।।

इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग-जप साधें।।
(मानस बाल. - ६९.४)

****

शिवमहिम्नःस्तोत्र के द्वारा षोडशोपचार शिवपूजनविधि

आगम ग्रन्थों में शिवमहिम्नःस्तोत्र का एक विशेष स्थान है, वहाँ इसे सिद्धस्तोत्र कहा जाता है। इन ग्रन्थों में इस स्तोत्र के न्यास, विनियोग और ध्यान बताए गए हैं। इस स्तोत्र के श्लोकों द्वारा शिवपूजन का विधान भी प्राप्त होता है। इन्हीं बातों को यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

शिवमहिम्नःस्तोत्र का विनियोग

ॐ अस्य श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रस्य श्रीपुष्पदन्त ऋषिः, शिखरिण्यादिच्छन्दांसि, श्रीमदाशुतोषशिवो देवता, हौं बीजं, जूं शक्तिः, सः कीलकम्, श्री साम्बसदाशिवप्रीत्यर्थेपाठे (अभिषेके) विनियोगः।

न्यासः

ऋष्यादिन्यासः – श्री पुष्पदन्तऋषये नमः शिरसि, शिखरिण्यादिच्छन्दोभ्यो नमः मुखे, श्रीमदाशुतोषशिवदेवतायै नमः हृदये, हौं बीजाय नमः गुह्ये, जूं शक्तये नमः पादयोः, सः कीलकाय नमः नाभौ, विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यासः –

भवः शर्वोरुद्रः (पूरा श्लोक)		**अङ्गुष्ठाभ्यां नमः**
नमो नेदिष्ठाय	,,	**तर्जनीभ्यां नमः**
बहलरजसे	,,	**मध्यमाभ्यां नमः**

मनः प्रत्यक्चित्ते	,,	अनामिकाभ्यां नमः
श्मशानेष्वाक्रीडा	,,	कनिष्ठिकाभ्यां नमः
हरिस्ते साहस्रं	,,	करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

हृदयादि न्यासः –

भवः शर्वोरुद्रः (पूरा श्लोक)		हृदयाय नमः
नमो नेदिष्ठाय	,,	शिरसे स्वाहा
बहलरजसे	,,	शिखायै वषट्
मनः प्रत्यक्चित्ते	,,	कवचाय हुम्
श्मशानेष्वाक्रीडा	,,	नेत्रत्रयाय वौषट्
हरिस्ते साहस्रं	,,	अस्त्राय फट्

ध्यानम् –

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्।।

इस श्लोक को बोलते हुए शिवजी का ध्यान करें। इसके पश्चात् आगे बताए गए महिम्नःस्तोत्र के श्लोकों से पहले **ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्रौं जूं सः** - यह प्रणवयुक्त बीजमन्त्र लगाकर श्लोकों का यथाक्रम उच्चारण करते हुए शिवजी का षोडशोपचार पूजन करना चाहिए।

त्वमर्कस्त्वं सोमः ...	पादयोः पाद्यं समर्पयामि
त्रयी सांख्यं योगः ...	हस्तयोरर्घ्यं ,,
भवः शर्वोरुद्रः ...	आचमनीयं जलं ,,
नमो नेदिष्ठाय ...	जलस्नानं ,,
बहलरजसे ...	दुग्धस्नानं ,,
ऐं ह्रीं श्रीं ह्रौं जूं सः (बीजमन्त्र)	शुद्धजलस्नानं ,,
मनः प्रत्यक्चित्ते ...	दधिस्नानं ,,
बीजमन्त्र	शुद्धजलस्नानं ,,
श्मशानेष्वाक्रीडा ...	घृतस्नानं ,,
बीजमन्त्र	शुद्धजलस्नानं ,,
स्वलावण्याशंसा ...	मधुस्नानं ,,
बीजमन्त्र	शुद्धजलस्नानं ,,
प्रजानाथं नाथ ...	शर्करास्नानं ,,
बीजमन्त्र	शुद्धजलस्नानं ,,
वियद्व्यापी तारा ...	पुनः शुद्धोदकस्नानं ,,
क्रतौ सुप्ते जाग्रत् ...	वस्त्रं ,,
रथः क्षोणी यन्ता ...	यज्ञोपवीतं ,,
क्रियादक्षो दक्षः ...	उपवस्त्रं ,,
यदृद्धिं सुत्राम्णो ...	गन्धं ,,
अकाण्डब्रह्माण्ड ...	अक्षतान् ,,
असिद्धार्था नैव ...	भस्म ,,
हरिस्ते साहस्रं ...	पुष्पाणि ,,
अयत्नादापाद्य ...	बिल्वपत्राणि ,,
तवैश्वर्यं यत्नाद् ...	नानापरिमलद्रव्यं ,,
तवैश्वर्यं यत्तद् ...	सुगन्धिद्रव्यं ,,
तवैश्वर्यं यत्नाद् ...	धूपं ,,

अमुष्य त्वत्सेवा	...	दीपं	समर्पयामि
महीपादाघाताद्	...	नैवेद्यं	,,
नमो नेदिष्ठाय	...	नीराजनं (आरती)	,,
कृशपरिणति चेतः	...	पुष्पाञ्जलिं	,,
असितगिरिसमं	...	क्षमाप्रार्थना	
त्वमर्कस्त्वं सोमः	...	प्रदक्षिणा	

इस प्रकार विधिपूर्वक महादेव का पूजन करने के अनन्तर भक्तिभाव से श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्र का पाठ करें। तदनन्तर उत्तर-पूजा करके पाठ समर्पण एवं क्षमाप्रार्थना करें। निष्काम भाव से इस प्रकार शिवपूजन एवं महिम्नःस्तोत्र का पाठ करने से भगवान् शिव अतिशीघ्र प्रसन्न होते हैं। चित्तशुद्धि के लिए यह अनुष्ठान एक विशिष्ट उपाय है।

*****

सर्वं सदाशिव सहस्व ममापराधं
मग्नं समुद्धर महत्यमुमापदब्धौ।
सर्वात्मना तव पदाम्बुजमेव दीनः
स्वामिन्ननन्यशरणः शरणं प्रपद्ये।।

(आत्मार्पणस्तुतिः)

हे सदाशिव! मैं अत्यन्त दीन-हीन प्राणी अनन्य शरण होकर सब प्रकार से आपके चरणकमलों की शरण में आया हूँ। आपदाओं के विशाल सागर में डूबते हुए मेरा उद्धार कीजिए और मेरे सभी अपराधों को कृपा करके क्षमा कर दीजिए।

नर्मदामहिमा

ॐ नर्मदायै नमः

ॐ नर्मदायै नमः प्रातर्नर्मदायै नमो निशि।
नमस्ते नर्मदे देवि त्राहि मां भवसागरात्।।

नमोऽस्तु ते पुण्यजले नमो मकरगामिनि।
नमस्ते पापमोचिन्यै नमो देवि वरानने।।
(रेवाखण्ड-१२.१)

स्कन्दपुराण में ऐसा कथन है कि जीवों के कल्याण के निमित्त भगवान् शंकर अमरकण्टक में मेकल पर्वत पर तपस्यारत थे। तभी उनके शरीर से स्वेद (पसीना) निकला और एक बिन्दु के रूप में पृथ्वी पर गिरा, उसी से नदियों में श्रेष्ठ पुण्यसलिला माँ नर्मदा का प्राकट्य हुआ और देखते-ही-देखते सम्पूर्ण पर्वत जल से आप्लावित हो गया।

तपतस्तस्य देवस्य स्वेदः समभवत्किल।
तं गिरिं प्लावयामास स स्वेदो रुद्रसम्भवः।।
(रेवाखण्ड - ३.१६)

तस्मादासीत्समुद्भूता महापुण्या सरिद्वरा।
(रेवाखण्ड - ३.१७)

माँ नर्मदा का नाम नर्मदा क्यों हुआ? इसमें भी एक रहस्य है।

सप्तकल्पक्षये क्षीणे न मृता तेन नर्मदा। (रेवाखण्ड - २.५५)

सात कल्पों के क्षय होने पर भी नष्ट नहीं हुई, इसलिए इनका नाम नर्मदा है।

नर्म ददाति इति नर्मदा। जीवों को आनन्द-प्रमोद (नर्म) देती है, इसलिए भी इनका नाम नर्मदा है। माँ नर्मदा में दूसरी नदियों की अपेक्षा एक विशेषता यह है कि अन्य नदियाँ विशेष-विशेष जगहों पर पुण्य-प्रभाववाली होती हैं, परन्तु नर्मदा सर्वत्र ही पुण्य-प्रभाववाली है -

गङ्गा कनखले पुण्या कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा।। (रेवाखण्ड-२१.५)

माँ नर्मदा की एक विशेषता यह है कि कल्प के अन्त में सम्पूर्ण तीर्थों और भूतजात के नष्ट होने पर भी माँ नर्मदा यथावत बनी रहती हैं।

एवं मया पुरा दृष्टो युगान्ते सर्वसङ्क्षयः।
वर्जयित्वा महापुण्यां नर्मदां नृपसत्तम।। (रेवाखण्ड-१७.३७)

अर्थ : महर्षि मार्कण्डेयजी युधिष्ठिर को कहते हैं, 'हे राजन्! कल्प के अन्त में मैंने सम्पूर्ण भूतजात को नष्ट होते हुए देखा, केवल नर्मदा को छोड़कर।'

इतना ही नहीं, मृत्युलोक में माँ नर्मदा बड़े-बड़े पापों को सहज ही नष्ट करनेवाली कल्पलता है-

नर्मदा मर्त्यलोकस्य महापातकनाशिनी (रेवाखण्ड-८.५३)

माँ नर्मदा के तुल्य किसी भी नदी के तट पर तीर्थ नहीं हैं।

षष्ठीतीर्थसहस्राणि षष्ठीकोट्यस्तथैव च।
पर्वतादुदधिं यावदुभेकूले न संशयः।। (रेवाखण्ड-२१.१६)

अर्थ : अमरकण्टक पर्वत से लेकर समुद्र पर्यन्त नर्मदा के दोनों तटों पर निश्चय ही साठ करोड़ साठ हजार तीर्थ हैं। और भी -

अकामकामाश्च तथा सकामा रेवान्तमाश्रित्य म्रियन्ति तीरे।
जडान्धमूकास्त्रिदिवं प्रयान्ति किमत्र विप्रा भवभावयुक्ताः।।
(रेवाखण्ड-१०.६५)

अर्थ : निष्काम हुए या सकाम जड़, अन्ध, मूक इत्यादि भी नर्मदा का आश्रय लेकर यदि प्राण त्यागते हैं, तो स्वर्ग को प्राप्त होते हैं। यदि शिवभावयुक्त कोई ब्राह्मण हो, तो कहना ही क्या है!

इस प्रकार माँ नर्मदा की महिमा शास्त्रों में तो वर्णित है ही, साथ-साथ जगत् में भी लोगों को अनुभूत है। स्कन्दपुराण में कथन है कि कलियुग के पाँच हजार वर्ष व्यतीत होने पर गङ्गा की शक्ति नर्मदा में आकर समाहित हो जाएगी। इसलिए कलियुग के पाँच हजार वर्ष व्यतीत होने पर सन्तों एवं सज्जन-धार्मिक पुरुषों के लिए नर्मदाजी का आश्रय लेना एक प्रकार से अनिवार्य हो जाता है।

नर्मदा सर्वदा सेव्या बहुनोक्तेन किं नृप।
यदिच्छेन्न पुनर्द्रष्टुं घोरं संसारसागरम्।। (रेवाखण्ड-२३.७)

अर्थ : महर्षि मार्कण्डेयजी कहते हैं, 'हे राजन्! यदि कोई व्यक्ति इस घोर संसारसागर को पुनः नहीं देखना चाहता है, तो नित्य नर्मदा का ही सेवन करे।

नर्मदा के तट पर रहनेवाले, परिक्रमा करनेवाले या कभी-कभी दूर से आकर दर्शन करनेवाले लोग माँ नर्मदा का आश्रय प्राप्त कर एक विलक्षण आनन्द तथा निर्भयता का अनुभव करते हैं। उनके हृदय में नर्मदा का आकर्षण दृढ़ होकर बस जाता है। यदि कोई व्यक्ति नर्मदा के तट पर आकर उसके जल को

एक बार भी ग्रहण कर लेता है, तो वह उसको जीवन भर आकर्षित करता रहता है। माँ नर्मदा की परिक्रमा करनेवालों को पद-पद पर एक विलक्षण अनुभूति होती है। उसको वे आजीवन भुला नहीं पाते हैं। मुझे तो बारम्बार यह अनुभव हुआ कि इस युग में यदि कहीं मातृस्नेह है, तो वह सर्वसमर्थ माँ नर्मदा की गोद में ही उपलब्ध है।

मैंने बहुत भ्रमण किया है। जगह-जगह कई प्रकार की अनुभूतियाँ भी हुई हैं क्योंकि परमेश्वर तो कण-कण में विद्यमान हैं। आप जहाँ भी उसपर भाव केन्द्रित करें, वहीं चमत्कार की अनुभूति होती ही है। पर जो वात्सल्य और निश्चिन्तता माँ नर्मदा के तट पर मिली, वह अन्य जगह देखने को नहीं मिली। लोगों का जीवन देखकर और सुनकर एक विलक्षण चमत्कार माँ नर्मदा की गोद में अनुभव होता है, ऐसा अन्यत्र हमें कहीं न तो देखने को मिला न सुनने को। लोगों का भयंकर रोग भी माँ नर्मदा का आश्रय लेने पर चमत्कारी ढंग से नष्ट होते हुए देखा गया है।

व्यक्ति मानसिक या विभिन्न प्रकार की बाहरी समस्याओं से ग्रस्त होकर माँ नर्मदा की परिक्रमा करने के लिए चल पड़ता है, तो उसकी समस्याओं का समाधान सहज ही हो जाता है। ऐसी घटनाएँ प्रायः प्रतिदिन देखने-सुनने को मिलती हैं।

स्वयं भगवान् शंकर ही भगवत्पाद शंकराचार्यजी के रूप में अवतीर्ण हुए। यदि भगवान् का शंकराचार्य के रूप में अवतार नहीं होता, तो आज हम लोगों को यह मन्दिर, मठ इत्यादि जिस प्रकार दीख रहे हैं, उस प्रकार से नहीं दीखते। बौद्धभाव से सम्पूर्ण समाज आक्रान्त था, ऐसे समय में भगवान् शंकराचार्य गुरुप्राप्ति और संन्यास-दीक्षा के लिए दक्षिण भारत से चलकर माँ नर्मदा के तट पर ही पहुँचे। नर्मदा तट पर ही उनका संन्यास-संस्कार सम्पन्न हुआ। वहीं से प्रेरणा लेकर उन्होंने वेद-विरोधी अधर्म को समाप्त कर वैदिक

धर्म की पुनः स्थापना की।

भगवान् शंकराचार्यजी जब प्रथम बार माँ नर्मदा के पावन तट पर आए, तो उनके अन्दर एक विलक्षण भाव प्रकट हुआ। उसी भाव को वे नर्मदाष्टक में अभिव्यक्त करते हैं। **गतं तदैव मे भयं त्वदम्बु वीक्षितं यदा...** हे माते! आपके तट पर आकर आपके जल के दर्शन करते ही मेरे सम्पूर्ण भय दूर हो गए हैं। समस्याओं से भरे हुए इस संसार में व्यक्ति भयग्रस्त ही रहता है। वह भय माँ नर्मदा के दर्शनमात्र से दूर हो जाता है। माँ नर्मदा के दर्शनमात्र से ही एक विलक्षण शक्ति का अनुभव होता है।

परम्परा से ऐसा सुना है कि एक बार मार्कण्डेयजी भ्रमण करते हुए माँ नर्मदा के तट पर पहुँचे। उनके मन में एक विलक्षण भाव उत्पन्न हुआ और वे ॐकारेश्वर में पहुँचकर माँ नर्मदा के तट पर बैठ गए। वे तट पर बैठे रहे लेकिन स्नान करने नहीं गए। कुछ समय व्यतीत हो गया तो माँ नर्मदा ने सोचा मेरा प्रिय पुत्र मार्कण्डेय आज स्नान नहीं कर रहा है। क्या बात है? ऐसा सोचकर उनके समक्ष प्रकट होकर माँ ने कहा, 'मार्कण्डेय! आज स्नान क्यों नहीं कर रहे हो?' तब उन्होंने कहा, 'माँ! मैंने शास्त्र में सुना है **दर्शनादेव नार्मदम्...** आपके दर्शनमात्र से ही मुक्ति हो जाती है। मुझे तो मुक्ति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहिए। अतः मेरे मन में आया कि मुक्त तो मैं दर्शन करके ही हो गया, क्या मालूम स्नान करने से कोई दूसरा फल प्राप्त हो जाए? और दूसरा कोई फल तो मुझे चाहिए भी नहीं। इस प्रकार का चिन्तन करता हुआ मैं यहाँ पर बैठा हूँ।' इतना सुन माँ नर्मदा मुस्कुराने लगीं और मार्कण्डेयजी को कृपादृष्टि से देखा।

मार्कण्डेयजी के मन में एक संकल्प हुआ कि मुझे माँ नर्मदा के तट पर पुरश्चरण करना है। यदि माँ कोई स्थान देवे तो मैं अनुष्ठान आरम्भ करूँ। उसी समय माँ नर्मदा के जल से एक शिलाखण्ड ऊपर की ओर आया। उसी पर बैठकर मार्कण्डेयजी ने पुरश्चरण किया। वह शिलाखण्ड आज भी

मार्कण्डेयशिला के नाम प्रसिद्ध है। इस प्रकार की यह एक किंवदन्ती है।

तात्पर्य यही है कि शास्त्रदृष्टि और अनुभव दोनों के आधार पर माँ नर्मदा सब प्रकार से बालकों को सम्भालती हैं। वह बालकों के दोषों को नहीं देखती हैं। यहाँ माँ कहने का रहस्य यही है कि अन्य देवता तो साधना के समय यदि साधक से कोई त्रुटि हो जाए, तो साधना का फल नहीं देते हैं। पर माँ नर्मदा यह नहीं देखती कि बालक में दोष है या गुण, यदि बालकभाव में होकर कोई माँ को पकड़े तो उसके गुण-दोष की चिन्ता माँ को हो जाती है। उसकी समस्याओं को दूर करने की चिन्ता माँ को रहती है। यही अनुभव माँ नर्मदा के तट पर होता है। भगवान् शंकराचार्यजी अपने अनुभव का गम्भीर और सहज रूप से नर्मदाष्टक में वर्णन कर रहे हैं।

माँ नर्मदा के प्राकट्य का वर्णन करके बड़े-बड़े दुःखों और उनके द्वारा उत्पन्न भय को नाश करनेवाली माँ नर्मदा है, इस प्रकार का भाव प्रकट करते हुए भगवान् शंकराचार्यजी स्तुति प्रारम्भ करते हैं :-

सबिन्दुसिन्धुसुस्खलत्तरङ्गभङ्गरञ्जितं
द्विषत्सुपापतापजातकारिवारिसंयुतम्।
कृतान्तदूतकालभूतभीतिहारिवर्मदे
त्वदीय पादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे।।१।।

अन्वयार्थः कृतान्तदूतकालभूतभीतिहारिवर्मदे! = कालरूप हुए यम दूतों के भयहारी कवच को देनेवाली, **देवि! नर्मदे!** = हे देवि नर्मदे! **सबिन्दुसिन्धुसुस्खलत्** = बिन्दु से लेकर सिन्धु तक लहराते हुए, **तरङ्गभङ्गरञ्जितम्** = तरंगखण्डों से रंजित (मनोहर), **द्विषत्सुपापताप-**

जातकारिवारिसंयुतम् = पापरूपी शत्रुओं से उत्पन्न ताप के शत्रु जल से युक्त, **त्वदीय** = आपके, **पादपङ्कजम्** = चरणकमलों को, **नमामि** = मैं नमस्कार करता हूँ।

नर्मदामहिमाकौमुदी

पृथ्वी पर दर्शन देते हुए भी देवताओं के तेज को धारण करनेवाली देवि! जीवों को सदैव वात्सल्यानन्द प्रदान करनेवाली नर्मदे! साक्षात् यमराज का ही दूत जो मृत्यु है, उससे जीवों को सदैव ही भय बना रहता है, पर आप ऐसी दयालु हैं कि अपने शरणागतों को एक अभयरूप कवच पहना देती हैं। जैसे, माताएँ ठण्डी से बचाने के लिए अपने बच्चों को वस्त्र इत्यादि पहना देती हैं, वैसे ही अभयरूप कवच देनेवाली देवि वर्मदे! अमरकण्टक के मेकल पर्वत से एक बिन्दु के रूप में प्रारम्भ होकर समुद्र पर्यन्त लहराता हुआ, विभिन्न प्रकार की तरंगों की भंगिमा से मनोहर हुआ, मन को आकर्षित करनेवाला आपका जल जीवों के सबसे बड़े शत्रु **पाप**, जो जीवों को परमार्थ मार्ग से भटकाने के लिए ही सदैव प्रयत्न में लगा रहता है और उससे उत्पन्न **ताप** (दुःख) इन दोनों के नाश के लिए सदैव उद्यत रहता है।

कितना भी भयंकर पाप या उससे उत्पन्न ताप हो, आपका जल उसको सहज ही नष्ट करने में समर्थ है। ऐसे पाप और ताप के शत्रुरूप आपकेजल के सहित आपके चरणकमलों को मैं नमस्कार करता हूँ।

****

अब माँ नर्मदा का अहैतुक कारुण्यभाव दर्शाते हैं - ऐसा नहीं है कि आप मात्र अपने भक्तों पर ही कृपा करती हों, बल्कि जो भी आपके आश्रित हैं,

वे आपकी महिमा जानें या न जानें, आप उनको दिव्य गति प्रदान करती हो। इस भाव से पुनः स्तुति करते हैं :-

त्वदम्बुलीनदीनमीनदिव्यसम्प्रदायकं
कलौमलौघभारहारि सर्वतीर्थनायकम्।
सुमत्स्यकच्छ-नक्रचक्रचक्रवाकशर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे।।२।।

अन्वयार्थः सुमत्स्य-कच्छ-नक्र-चक्र-चक्रवाकशर्मदे! = अपने जल में रहनेवाली सुन्दर मछलियों, घड़ियालों, मगरों, कच्छपों आदि जलचरों और किनारे पर रहनेवाले चकवा-चकवी इत्यादि पक्षियों को आनन्द देनेवाली, **देवि! नर्मदे!** = हे देवि नर्मदे! **त्वदम्बुलीनदीनमीन-दिव्यसम्प्रदायकम्** = तुम्हारे जल में रहनेवाली दीन-हीन मछलियों को भी दिव्य लोक प्रदान करनेवाले, **कलौ** = कलियुग में, **मलौघभारहारि** = पापरूपीसमूह के भार को हरण करनेवाले, **सर्वतीर्थनायकम्** = सभी तीर्थों के नायक, **त्वदीय** = आपके, **पादपङ्कजम्** = चरणकमलों को, **नमामि** = मैं नमस्कार करता हूँ।

नर्मदामहिमाकौमुदी

देवताओं और मनुष्यों को ही नहीं, बल्कि अपने जल में रहनेवाले जलचर-मछलियों, कच्छपों, घड़ियालों, मगरों और किनारे पर रहनेवाले पक्षी-चकवा, चकवी इत्यादि को भी आनन्द प्रदान करनेवाली (शर्मदे), हे देवि नर्मदे! देवता, ऋषिगण या मनुष्य पर ही आपकी कृपा है, ऐसी बात नहीं है, अपितु आपके चरणकमल ऐसे हैं कि आपके जल में सरल भाव से

रहनेवाली दीन-हीन मछलियाँ जो भले ही उनकी महिमा नहीं जानती हैं, आपकी स्तुति भी नहीं कर सकती हैं, उनको भी देह त्यागने पर आपके चरणकमलों के प्रभाव से दिव्य शरीर धारण कर देवत्व प्राप्त होता है :-

कीटाः पतङ्गाश्च पिपीलिकाश्च ये वै म्रियन्तेऽम्भसि नर्मदायाः।
ते दिव्यरूपास्तु कुलप्रसूताः शतं समा धर्मपरा भवन्ति।।
(रेवाखण्ड-१०.६३)

नर्मदा के जल में मरनेवाले कीट, पतंगे, चींटियाँ इत्यादि कोई भी जीव-जन्तु हों वे पुनः पवित्र कुल में उत्पन्न होकर दिव्यरूप धारणकर सैकड़ों वर्षों तक धर्मपरायण होकर रहते हैं। उन जीवों को इस प्रकार की गति प्रदान करनेवाले आपके चरणकमल ही हैं।

कलिकाल में जीवों के अन्तःकरण में मलों (पापों) का समूह इकट्ठा हो जाता है क्योंकि तमोगुण-रजोगुण का इतना प्रभाव है कि जीव चाहे कितना ही सावधान रहे, वह राग-द्वेषादि दोषों से आक्रान्त हुए बिना रह नहीं सकता है। इस प्रकार वह विभिन्न प्रकार के दोषों के भार से दब जाता है। परन्तु आपके चरणकमल ऐसे हैं कि वे जीव के इस दोषरूपी भार का ही हरण कर लेते हैं क्योंकि वे सभी तीर्थों में श्रेष्ठ हैं, सर्वतीर्थनायक हैं। ऐसे आपके चरणकमलों को मेरा नमस्कार है।

****

पुनः स्तवन करते हुए भगवान् शंकराचार्यजी कहते हैं - ऐसा नहीं है कि आपका जलमात्र ही पवित्र है, वरन् आपके तट की भूमि भी परमपावन है।

महागभीरनीरपूरपापधूतभूतलं
ध्वनत्समस्तपातकारि दारितापदाचलम्।

जगल्लये महाभये मृकण्डुसूनुहर्म्यदे
त्वदीय पादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे।।३।।

अन्वयार्थ : जगल्लये = प्रलयकाल में, **महाभये** = महाभय उत्पन्न होने पर, **मृकण्डुसूनुहर्म्यदे** = मृकण्डु ऋषि के पुत्र मार्कण्डेयजी को आश्रय प्रदान करनेवाली, **देवि नर्मदे!** = हे देवि नर्मदे! **महागभीरनीरपूरपापधूतभूतलम्** = महान् गम्भीर जल की बाढ़ से भूतल के पापों को धोनेवाले, (और) **ध्वनत्समस्तपातकारि** = सम्पूर्ण पापरूपी शत्रुओं को ललकारनेवाले, **दारितापदाचलम्** = आपदारूपी पर्वतों को विदीर्ण करनेवाले, **त्वदीय** = आपके, **पादपङ्कजम्** = चरणकमलों को, **नमामि** = मैं नमस्कार करता हूँ।

नर्मदामहिमाकौमुदी

प्रलयकाल में बढ़े हुए जल में डूबते हुए मार्कण्डेयजी के समक्ष महाभय उत्पन्न हो गया था, उस काल में मार्कण्डेयजी को आश्रय देनेवाली, देवि नर्मदे! इस प्रकार से आप सात कल्पों से आज तक उनकी रक्षा करती आ रही हो। बाढ़ के समय अतिगम्भीर जल से अपने तटवर्ती भूतल के दोषों का नाश कर उसको पवित्रता प्रदान करनेवाले आपके चरणकमल ही हैं, जिनका दर्शन करने से ही मनुष्यों के बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं और भाग्योदय हो जाता है। इतना ही नहीं, आपके दर्शन करनेवाले मनुष्यों को आपके जल से निकली हुई ध्वनि ऐसी लगती है मानो उनके पापों को ललकारती हुई नाश कर रही हो। यदि कोई मनुष्य बड़ी आपदा से भयग्रस्त होकर आपकी शरण में आ जाए, तो उसके आपदारूप पहाड़ को आपके चरणकमल ही विदीर्ण कर देते हैं। ऐसे प्रभावशाली आपके चरणकमलों को मैं नमस्कार करता हूँ।

****

पुनः भाष्यकार भगवान् स्तुति करते हुए कहते हैं - दूसरों का क्या कहूँ बड़े-बड़े ऋषियों के द्वारा सेवित आपके जल के दर्शन के अमोघ प्रभाव का मैं स्वयं ही अनुभव कर रहा हूँ।

गतं तदैव मे भयं त्वदम्बु वीक्षितं यदा
मृकण्डुसूनुशौनकासुरारिसेवि सर्वदा।
पुनर्भवाब्धिजन्मजं भवाब्धिदुःखवर्मदे
त्वदीय पादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे।।४।।

अन्वयार्थ : पुनर्भवाब्धिजन्मजम् = संसारसागर में बार-बार जन्म से उत्पन्न, **भवाब्धिदुःखवर्मदे!** = भवसागरविषयक दुःखों से रक्षा के लिए ज्ञानरूप कवच देनेवाली (वर्मदे)! **देवि नर्मदे!** = हे देवि नर्मदे! **सर्वदा** = सदैव, **मृकण्डुसूनुशौनक-असुरारिसेवि** = मार्कण्डेय, शौनक इत्यादि महर्षि और देवताओं के द्वारा सेवित, **त्वद्** = आपके, **अम्बु** = जल को, **यदा** = जब, **वीक्षितम्** = देखा, **तदा एव** = उसी समय, **मे** = मेरे, **भयम्** = जन्म-मरण इत्यादि के भय, **गतम्** = चले गए, **त्वदीय** = आपके, **पादपङ्कजम्** = चरणकमलों को, **नमामि** = मैं नमस्कार करता हूँ।

नर्मदामहिमाकौमुदी

शंकराचार्यजी कहते हैं - इस संसार में जन्म और मरण से उत्पन्न भयंकर दुःखों से रक्षा के लिए, उनका नाश करने के लिए अपने शरणागतों को ज्ञानरूप कवच देनेवाली (वर्मदे)! देवि नर्मदे! महर्षि मार्कण्डेय, महर्षि शौनक

तथा अन्य ऋषि-महर्षियों एवं श्रेष्ठ देवताओं के द्वारा नित्य ही सेवन किए जानेवाले आपके पुण्यप्रभाव जल को जबसे मैंने देखा, तब से मेरा जन्म-मरण इत्यादि अज्ञानविषयक भय दूर हो गया। अब मैं स्वस्थचित्त हो गया हूँ।

त्रिभिः सारस्वतं तोयं साप्ताहेन तु यामुनम्।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम्।। (रेवाखण्ड-२१.६)

अर्थ : सरस्वती नदी का जल तीन दिन स्नान करने पर मनुष्य को पवित्र करता है, यमुना का जल एक सप्ताह में, गङ्गा का जल स्नान करते ही पवित्र कर देता है, परन्तु नर्मदा का पावन जल तो दर्शनमात्र से ही मनुष्य को पवित्र करने में समर्थ है। इस प्रकार के आपके जल सहित आपके चरणकमलों को मैं नमस्कार करता हूँ।

****

आपके चरणों की कितनी प्रशंसा की जाए - असंख्य देवता, किन्नर, असुर आदि भी अपने-अपने लोकों को छोड़कर आपके चरणकमलों के दर्शन, पूजन के लिए अदृश्यरूप में आपके तट पर निवास करते हैं। ऐसा भाव प्रकट करते हुए भगवान् भगवत्पाद पुनः स्तुति करते हैं।

अलक्षलक्षकिन्नरामरासुरादिपूजितं
सुलक्षनीरतीरधीरपक्षिलक्षकूजितम्।
वशिष्ठशिष्टपिप्पलादकर्दमादिशर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे।।५।।

अन्वयार्थः वशिष्ठ-शिष्टपिप्पलाद-कर्दमादिशर्मदे = महर्षि वशिष्ठ, मुनिश्रेष्ठ पिप्पलाद, प्रजापति कर्दम इत्यादि को सुख देनेवाली, **देवि नर्मदे!** = हे देवि नर्मदे! **अलक्ष-लक्ष-किन्नर-अमर-असुरादिपूजितम्** = अदृश्यरूप से रहनेवाले लाखों किन्नर, देवता, असुर आदि से पूजित, **सुलक्ष-नीरतीर-धीरपक्षि-लक्षकूजितम्** = प्रत्यक्षरूप से आपके तट पर रहनेवाले लाखों धीर पक्षियों के कलरव से गुञ्जायमान्, **त्वदीय** = आपके, **पादपङ्कजम्** = चरणकमलों को, **नमामि** = मैं नमस्कार करता हूँ।

नर्मदामहिमाकौमुदी

आगे आद्यशंकराचार्यजी कहते हैं - वशिष्ठ महर्षि, पिप्पलाद मुनि, कर्दम प्रजापति तथा अन्य भी बहुत-से महर्षियों, सिद्धों तथा शरणागतों को सुख प्रदान करनेवाली, देवि नर्मदे! आपके तट पर लाखों (असंख्य) किन्नर, देवता, असुर और भी नाना प्रकार के देवकोटि के लोग, सिद्ध इत्यादि अदृश्यरूप से रहकर आपके चरणपूजन में लगे रहते हैं। कुछ बड़े-बड़े सिद्ध, देवता, ज्ञानी-महापुरुष पक्षियों के रूप में दृश्यरूप होकर भी आपके तट पर रहकर आपके चरणकमलों को स्तवनों से गुञ्जायमान करते रहते हैं। ऐसे आपके चरणकमलों को मैं नमस्कार करता हूँ।

****

बड़े-बड़े महर्षि आपके चरणकमलों को मात्र नेत्रों का ही विषय नहीं बनाते अपितु उनको अपने मानस-पटल में रखकर समाधि का आनन्द लेते हैं,

ऐसा आशय प्रकट करते हुए भगवान् भाष्यकार माँ नर्मदा की पुनः स्तुति करते हैं :-

सनत्कुमारनाचिकेतकश्यपात्रिषट्पदै
धृतं स्वकीयमानसेषु नारदादिषट्पदैः।
रवीन्दुरन्तिदेवदेवराजकर्मशर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे।।६।।

अन्वयार्थ : रवि-इन्दु-रन्तिदेव-देवराजकर्मशर्मदे = सूर्य, चन्द्रमा, रन्तिदेव, देवराज (इन्द्र), इत्यादि को कर्म में प्रेरित करके सुख प्रदान करनेवाली, **देवि नर्मदे!** = हे देवि नर्मदे! **सनत्कुमार-नाचिकेत-कश्यप-अत्रि-नारदादि षट्पदैः** = सनत्कुमार, नाचिकेत, कश्यप, अत्रि, नारद इत्यादि भ्रमरस्वरूपों के द्वारा, **स्वकीयमानसेषु** = अपने मानस-पटल में, **धृतम्** = धारण किए हुए, **त्वदीय** = आपके, **पादपङ्कजम्** = चरणकमलों को, **नमामि** = मैं नमस्कार करता हूँ।

नर्मदामहिमाकौमुदी

आचार्य शंकर कहते हैं - सूर्य, चन्द्रमा, रन्तिदेव, देवराज इन्द्र इत्यादि बड़े-बड़े यशस्वियों को कर्म में प्रेरित करके उनको उच्च पदों पर महिमान्वित कर ऐश्वर्य तथा सुख प्रदान करनेवाली हे देवि नर्मदे! जैसे भ्रमर पुष्प पर बैठकर उसके रसास्वादन से नहीं अघाता है, इसी प्रकार सनत्कुमार, नाचिकेत, कश्यप, अत्रि, नारद इत्यादि महर्षि तथा अन्य भी शुद्धचित्त सन्तगण आपके चरणकमलों को अपने मानस-पटल पर रखकर उनके चिन्तनरूपी रसास्वादन से नहीं अघाते हैं। जैसे भ्रमर पुष्प पर बैठकर मदमस्त हो जाता है, उसी प्रकार से

ये पुण्यशील लोग भी आपके चरणकमलों का चिन्तन करते हुए आनन्द से मदमस्त हो जाते हैं। आपके ऐसे चरणकमलों को मेरा नमस्कार है।

****

औरों की क्या बात करें, साक्षात् ईश्वर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को भी आप अपनी शक्तिरूपी कवच देकर उपकृत करनेवाली हैं। ऐसा भाव दर्शाते हुए भाष्यकार भगवान् माता नर्मदा की महिमा का पुनः कथन करते हैं :-

अलक्षलक्षलक्षपापलक्षसारसायुधं
ततस्तु जीवजन्तुतन्तुभुक्तिमुक्तिदायकम्।
विरञ्चिविष्णुशङ्करस्वकीयधामवर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे।।७।।

अन्वयार्थ : विरञ्चि-विष्णु-शङ्करस्वकीयधामवर्मदे = ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को भी अपनी शक्तिरूप कवच प्रदान करनेवाली, **देवि नर्मदे!** = हे देवि नर्मदे! **अलक्ष-लक्ष-लक्षपाप-लक्षसार-सायुधम्** = अदृष्ट, दृष्ट लाखों पापों को पूर्णतः लक्ष्य बनानेवाले अमोघ आयुध के समान, **ततः** = उससे (और), **तु** = भी, **जीव-जन्तु-तन्तु-भुक्ति-मुक्तिदायकम्** = छोटे-बड़े सभी प्रकार के जीव-जन्तुओं को भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले, **त्वदीय** = आपके, **पादपङ्कजम्** = चरणकमलों को, **नमामि** = मैं नमस्कार करता हूँ।

ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को अपना शक्तिरूप कवच प्रदान करनेवाली अथवा अपने भक्तों को ब्रह्मा, विष्णु और शंकर के धाम (लोक) रूप कवच प्रदान करनेवाली हे देवि नर्मदे! अपने शरणागतों और भक्तों के अदृष्ट (सञ्चित पाप), और दृष्ट (प्रारब्ध बनकर उपस्थित हुए) लाखों प्रकार के पाप और उनसे उत्पन्न हुए दुःख को नष्ट करने के लिए पूर्णरूप से लक्ष्य बनानेवाले अमोघ आयुध के समान आपके चरणकमल हैं। इसके अतिरिक्त आपके चरणकमल अन्य भी अपने शरणागत छोटे-बड़े सभी जीव-जन्तुओं को वासना (इच्छा) के अनुसार भोग प्रदान करनेवाले और निष्कामियों को मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। आपके ऐसे चरणकमलों को मेरा नमस्कार है।

****

माता नर्मदा के तट पर जहाँ भी सुनो वहीं अमृतमय पापनाशक उनका ही यशोगान सुनने को मिलता है। ऐसा आशय दर्शाते हुए भगवान् भगवत्पाद इस स्तोत्र का उपसंहार करते हैं :-

अहोऽमृतं स्वनं श्रुतं महेशकेशजातटे
किरातसूतवाडवेषु पण्डिते शठे नटे।
दुरन्तपापतापहारि सर्वजन्तुशर्मदे
त्वदीय पादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे।।८।।

अन्वयार्थ : अहो! = अहो! (आश्चर्य है कि), **महेशकेशजातटे =** भगवान् शंकर की जटाओं से प्रकट हुई रेवा के तट पर,

किरात-सूत-वाडवेषु = भील, भाट (बन्दीजन), ब्राह्मण, **पण्डिते** = पण्डित, (और) **शठे नटे** = धूर्त नटों के बीच में, **दुरन्तपापतापहारि** = कठिनाई से नाश होनेवाले पाप और तज्जन्य ताप को हरण करनेवाला, **अमृतम्** = अमृतमय, **स्वनम्** = शब्द (यशोगान), **श्रुतम्** = हमने सुना, **सर्वजन्तुशर्मदे!** = सभी जीवों को सुख प्रदान करनेवाली, **देवि नर्मदे!** = हे देवि नर्मदे! **त्वदीय** = आपके, **पादपङ्कजम्** = चरणकमलों को, **नमामि** = मैं नमस्कार करता हूँ।

नर्मदामहिमाकौमुदी

भगवान् भाष्यकार पुलकित हृदय से आश्चर्य प्रकट करते हुए कहते हैं - अहो! भगवान् शिव की जटाओं के स्वेद से प्रकट हुई रेवा के किनारे तो विलक्षण अनुभूति हो रही है। माँ रेवा के तट पर विचरण करते हुए हमने जहाँ कहीं भील, भाट, ब्राह्मण एवं पण्डितों के बीच में और क्या कहा जाए, यहाँ के धूर्त नटों के बीच में भी भयंकर पापों और उनसे उत्पन्न तापों को हरनेवाली, मृत्यु से रक्षा करनेवाली अमृतमयी वाणी (नर्मदा का यशोगान) सुनी है। अपने आश्रित सम्पूर्ण जीवों को सुख प्रदान करनेवाली, देवि नर्मदे! आपके चरणकमलों में मेरा नमस्कार है।

****

अपने हृदय के भावों को प्रकट करते हुए भगवान् भगवत्पाद अब स्तोत्रपाठ का माहात्म्य बतला रहे हैं -

इदन्तु नर्मदाष्टकं त्रिकालमेव ये सदा
पठन्ति ते निरन्तरं न यान्ति दुर्गतिं कदा।
सुलभ्य देहदुर्लभं महेशधामगौरवं
पुनर्भवा नरा न वै विलोकयन्ति रौरवम्।।९।।

त्वदीय पादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे।
त्वदीय पादपङ्कजं नमामि मातर्नर्मदे।।

अन्वयार्थ : **इदम्** = इस, **नर्मदाष्टकम्** = नर्मदाष्टक को, **ये** = जो (कोई भी), **सदा** = सदैव (नित्य), **त्रिकालम्** = तीन समय (तीन बार), **पठन्ति** = पढ़ते हैं, **ते** = वे, **निरन्तरम्** = कभी-भी, **दुर्गतिम्** = दुर्गति को, **न यान्ति** = प्राप्त नहीं होते हैं, **देहदुर्लभम्** = अन्य देहधारियों को दुर्लभ, **महेशधामगौरवम्** = शिवलोक के गौरव को, **सुलभ्य** = सहजता से प्राप्त करके, **पुनर्भवाः नराः** = बार-बार उत्पन्न होनेवाले मनुष्य, **वै** = निश्चय ही, **कदा एव** = कभी-भी, **रौरवम्** = रौरव नरक को, **न विलोकयन्ति** = नहीं देखते हैं।

नर्मदामहिमाकौमुदी

इस परम पावन नर्मदाष्टक स्तोत्र का जो कोई मनुष्य, देवता, असुर आदि प्रतिदिन तीन समय (प्रातः, मध्याह्न, सायं-सन्ध्याकाल में) पाठ करते हैं तो वे माँ नर्मदा की कृपा प्राप्त करके कभी-भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होते हैं। देहधारी प्राणियों के लिए दुर्लभतम शिवलोक के गौरव को अनायास ही प्राप्त

करके ये पुनः-पुनः उत्पन्न होकर पुनः-पुनः मृत्यु को प्राप्त होनेवाले मनुष्य कभी-भी महाभयानक रौरव इत्यादि नरकों को नहीं देखते हैं। हे देवि नर्मदे! आपके चरणकमलों को मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

****

इस स्तोत्र में भगवान् शंकराचार्यजी ने कहा - **अमृतं स्वनं श्रुतं महेशकेशजाततटे** - हमने नर्मदा के तट पर अमृतमय शब्द सुने। ऐसा ही अनुभव प्रत्येक परिक्रमावासी, तटवासी या कभी-कभी नर्मदा के तट पर पहुँचनेवाले का भी है। तट के लोगों में माँ नर्मदा के प्रति विलक्षण विश्वास बना हुआ है कि माँ हर प्रकार से हम लोगों पर कृपादृष्टि रखती है। परिक्रमा के समय लोग हमसे पूछते थे, **'महाराज! माँ नर्मदा पर जो ये बाँध बँध रहे हैं, क्या माँ इन बाँधों को बनने देगी?'** हमने कहा, **'यदि नर्मदा की इच्छा बाँध बनाने की है, तो बनने देगी, यदि इच्छा न हो, तो बनने नहीं देगी। वह तो उदार माता है। हो सकता है, माँ नर्मदा की यह इच्छा हो कि मेरा जल दूर-दूर तक पहुँचकर मेरे बालकों की प्यास शान्त करे, उनकी खेती को पुष्ट करे, यदि उसके हृदय में ऐसा विचार है तो बाँध अवश्य बनने देगी।'**

इस प्रकार लोगों के मन में एक दृढ़ विश्वास है कि माँ की इच्छा के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकता। कोई परिक्रमावासी नियम लेकर किनारे पर चलता है और उसका नियम पूर्ण हो जाता है, तो ऐसा आभास होता है कि यदि माँ की कृपा नहीं होती तो मेरा नियम पूर्ण नहीं होता।

किनारे पर चलते समय कभी-कभी किसी स्थल पर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है कि आगे बढ़ना कठिन हो जाता है। परन्तु उसके नियम को माँ नर्मदा पूर्ण करती हैं। कभी-कभी ऐसी जगह भी चलना पड़ता है कि माँ नर्मदा के जल का दर्शन नहीं होता है। उस समय चित्त में व्याकुलता उत्पन्न हो जाती है

और विरह से ह्रदय में एक छटपटाहट होने लगती है कि कब और कैसे माँ के तट पर पहुँचा जाए। कभी-कभी हमको परिक्रमा में इस प्रकार की अनुभूति हुई कि मान लीजिए हम सीधे-सीधे जा रहे हैं और तट से दूर कोई विशिष्ट सन्त रहते हैं। माँ नर्मदा हमें उन सन्त का दर्शन कराना चाहती हैं, तो उनकी प्रेरणा से हम अचानक मार्ग भूल जाएँगे और भटकते-भटकते वहीं पहुँच जाएँगे जहाँ वे सन्त रहते हैं।

गुजरात में शूलपाणि की झाड़ी में पहले तो यह अनुभव हुआ कि पहाड़ जिधर घुमाना चाहता है, माँ नर्मदा उधर मुड़ गयी हैं। वहाँ पर माँ नर्मदा का बहुत सरल-सहज भाव दिखाई देता है। फिर ऐसा अनुभव होता है मानो पहाड़ को अहंकार हो गया हो कि देखो, मैं जिधर चाहता हूँ नर्मदा उधर से ही चलती है। उसी समय पहाड़ के अहंकार को देखकर नर्मदा अपने स्वरूप को ऐसा बना लेती है कि वह जिधर से बहना चाहती है उधर से ही बहती है। पता ही नहीं लगता है कि पहाड़ का टुकड़ा कहाँ गया और नर्मदा की धारा कहाँ तक चली गयी? बड़े-बड़े पहाड़ों को तोड़कर इधर-से-उधर चली जाती है।

जबलपुर के पास इतना विलक्षण दृश्य आता है कि मानो पहाड़ को फाड़कर माँ नर्मदा निकली हो। विभिन्न स्थानों में इसी प्रकार की अनुभूति होती है कि कोई अहंकार लेकर नर्मदा-किनारे टिक ही नहीं सकता। जैसे कोई बालक माता को जिधर चाहे दौड़ा सकता है, वैसे ही कोई भी शरणागत होकर अपने संकल्प के पीछे माँ नर्मदा की शक्ति लगा सकता है। इस प्रकार की अनेक विलक्षण अनुभूतियाँ नर्मदा की परिक्रमा में होती हैं। परिक्रमा में हमने एक नियम लिया था कि पेड़ के नीचे ही सोएँगे, परन्तु कभी बहुत बड़ी समस्या रात में आनेवाली होती, तो माँ नर्मदा ऐसी योजना बनाती कि किसी कारण से हमको बलात् किसी गाँव के मन्दिर में जाना पड़ता, किसी के आग्रह से या किसी के हठ से अथवा परिस्थितिवशात्। रात में फिर अनुभूति होती कि इतनी भयंकर

वर्षा होनी थी कि यदि पेड़ के नीचे रहता, तो इस समय क्या दशा हुई होती ?

सन्तों की छोटी-छोटी घटनाओं में भी दिखाई देता है कि माँ नर्मदा साधक को किस प्रकार माता की तरह सम्भालती हैं। सम्भालने के भी दो पहलू हैं - पहला बाहर का, दूसरा पहलू अन्दर से सम्भालने का। जीव का संकल्प प्रायः बाहर ही बिखरा रहता है। परन्तु जीव का मुख्य लक्ष्य परमेश्वर को प्राप्त करने का है। शिव को प्राप्त कराने के प्रति माँ नर्मदा साधक को अन्दर से सम्भालकर रखती हैं और बाहर से भी जगत् की दृष्टि से सम्भालकर रखती हैं। अन्दर-बाहर से सम्भालने का एक विलक्षण ममत्वपूर्ण वात्सल्य माँ नर्मदा के सम्बन्ध में देखा जाता है। इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है।

*****

तटपुलिनं शिवदेवा यस्य यतयोऽपि कामयन्ते वा।
मुनिनिवहविहितसेवा शिवाय मम जायतां रेवा।।

जिसके बालुकामय तटप्रदेश पर निवास की शिव आदि देवता तथा वीतराग संन्यासीजन भी इच्छा रखते हैं एवं जिसकी सेवा मुनि समुदाय करता है, ऐसी वह माँ रेवा मेरा कल्याण करे।

*****

नर्मदास्तुतिः

जय षण्मुखसायुधईशनुते

जय सागरगामिनि शम्भुनुते।

जय दुःखदरिद्रविनाशकरे

जय पुत्रकलत्रविवृद्धिकरे।।

(रेवाखण्ड-९७.१०६)

अर्थ : सशस्त्र शंकर और कार्तिकेयजी के द्वारा वन्दित होनेवाली हे देवि! तुम्हारी जय हो। शिव के द्वारा प्रशंसित एवं सागर में मिलनेवाली हे देवि! तुम्हारी जय हो। दुःख और दरिद्रता का नाश तथा पुत्र-कलत्र की वृद्धि करनेवाली हे देवि! तुम्हारी जय हो, जय हो।।

इत्यों शम्